CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Abhishek Kumar

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

* श्री *

अलङ्कारसारमञ्जरी

हिन्दी-व्याख्या-सहिता

सम्पादकः-

शान्तिप्रिय द्विवेदी

शारदा संस्कृत संस्थान

वाराणसी-२२१००२

२००२ मूल्य १५-००

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

च्यपतो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अलङ्कारसारमञ्जरी

हिन्दी-व्याख्या-सहिता

सम्पादकः

श्री शान्तिप्रियद्विवेदी

[redacted]
मनोज गर्ग

प्रकाशक

शारदा संस्कृत संस्थान

वाराणसी-२२१००१

१९८-९९

[मूल्य । १५-००

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशक :—
शारदा संस्कृत संस्थान
सी. २७/५९,
जगतगंज, वाराणसी–२२१००२

अन्य प्राप्तिस्थान :
(शारदा भवन)
डी० ३६/४४ अगस्त्यकुण्ड, वाराणसी–२२१००१

दूरभाष : ३२७४७७

© प्रकाशकाधीन

मुद्रक:—
आचार्य मुद्रणालय,
ए ११२ गायघाट, वाराणसी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रस्तावना

मानवानां कृते काव्यानामुपयोगिताऽपरिहार्यमेव। इदं शास्त्रं वेदान
किन काव्यग्रन्थानाञ्च ज्ञानाय नितान्तमपेक्षितम्, यतः पुरा काव्य
वनतया अलंकार एव मन्यते स्म। अलङ्कारेणैव कविरात्मस्थानिनं
ध्वनिवक्रोक्त्यौचित्याख्यान् अभिव्यनक्ति सम्प्रदायान्। न केऽपि अल
ारं विना काव्यात्मत्वभाजो भवन्ति। अलङ्कारसम्प्रदायस्तु आचार्य
महेन प्रवर्त्तितः। एतत्सम्प्रदायानुसारिणां मते अलङ्कार एव काव्य
वातवः। तस्मादेव—

'अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलङ्कृती॥

इति कथयन् जयदेवोऽपि काव्ये जीवनाधायकतयाऽलङ्कारानेव स्वी
रोति। अलङ्कारः मुख्यतया द्विविधा—शब्दालङ्कारा अर्थालङ्काराश्च
नुप्रासोपमादीपकरूपकाख्याश्चत्वार एवालङ्काराः भरतेन प्रतिपादिता
एवानुदिनं वर्धमानाः कुवलयानन्दे १२५ संख्यकताङ्गताः। अतए
स्कृतसाहित्योपासकानां मानवानां कृते अलङ्कारज्ञानं महत्त्वपूर्णमन्य
मं तत्त्वमस्तीति मत्वा सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयीयोत्त
ध्यमपाठ्यक्रमे कतिचिदलङ्काराः निर्धारिताः। निर्धारितैरलङ्कारं
एवात्र लघुग्रन्थे साहित्यदर्पणचन्द्रालोकतश्च मया एकत्रीकृताः।

साहित्यदर्पणचन्द्रालोकाऽऽकरग्रन्थाभ्यामेकत्रीकृतेऽपि संक्षेपेणैवालङ्क
राणां व्याख्या कृताऽस्त्यत्र, यतो हि उत्तरमध्यमछात्राणां कृते अलङ्कार
सामान्यज्ञानमेवावश्यकम्। अतएव सङ्कलितानामलङ्काराणां भेदोपभेदादि
परित्यज्य लक्षणोदाहरणमात्रमेवात्र प्रदर्शितमिति।

सम्पादकः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अलङ्कारों का स्वरूप

अलङ्कारों के सम्बन्ध में काव्यशास्त्रियों में दो प्रकार के सम्प्रदाय लित हैं। उनमें से एक सम्प्रदाय अलङ्कारों को काव्य का अन्तस्तत्त्व ाता है जब कि दूसरा सम्प्रदाय बाह्यतत्त्व। अन्तस्तत्त्व मानने वालों ामन, जयदेव आदि प्रसिद्ध हैं। इसके विपरीत बाह्य-तत्त्व मानने ों में भामह, उद्भट, मम्मट, विश्वनाथ, जगन्नाथ आदि हैं। अन्त-त्त्व-सम्प्रदाय के अनुसार अलङ्कार काव्य का वह तत्त्व है जिसके ा काव्य की काव्यता सिद्ध नहीं हो सकती, क्योंकि चमत्कृत करने ही काव्य की सिद्धि रहती है और सौन्दर्य के बिना चमत्कृति सम्भव ीं होती। अतः सौन्दर्य ही अलंकार है, जो काव्य की आत्मा है। ौन्दर्यमलंकार" (काव्यलङ्कार सूत्राणि १–२)। वैसे तो आचार्य मन भी काव्य के शोभाधायक धर्मों को गुण कहते हैं और काव्य अतिशयता बढ़ाने वाले तत्त्व को अलङ्कार कहते हैं–"काव्यशोभायाः र्तारो धर्माः गुणाः" (का. सू. ३–१), तदतिशयहेतवस्त्वलङ्काराः ा. सू. ३–२)। इसके साथ-साथ आचार्य वामन अलङ्कारों को व्य का अनित्य धर्म भी मानते हैं और गुणों को नित्य धर्म। "पूर्वे त्याः" (का. सू. ३–३)। आचार्य जयदेव तो अलङ्कारों को नित्य-र्म ही मानते हैं। वे कहते हैं कि जो बिना अलङ्कार का काव्य मानता वह आग को ठण्डा पदार्थ क्यों नहीं मानता ?

अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलङ्कृती॥

(चन्द्रालोक १-८)।

सीलिए जयदेव के अनुसार काव्य की परिभाषा होती है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषणा।
सालङ्काररसानेकवृत्तिर्वाक्काव्यनामभाक् ॥ चं. १-७

दूसरे सम्प्रदाय के अनुसार अलङ्कार काव्य का वाह्यध
अलङ्कार सर्वत्र वाञ्छित है किन्तु कहीं-कहीं स्पष्ट अलङ्कार न हो
भी काव्यत्व की हानि नहीं होती; जैसा कि आचार्य मम्मट ने क
"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि" (का० प्र०
इसी प्रकार से आचार्य विश्वनाथ ने कहा है कि जैसे शरीर की
के लिए कटक, कुण्डल आदि का उपयोग होता है वैसे ही रसा
काव्य का उत्कर्षाधायक वाह्यधर्म अलङ्कार होता है—

"अलङ्काराः कटककुण्डलादिवत्"

"शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत् ॥
(सा. द. १०–१)

आचार्य जगन्नाथ भी अलङ्कारों के विषय में इसी तरह की ध
रखते हैं। पण्डित विश्वेश्वर के अनुसार भी अलङ्कार काव्य के
अपरिहार्य बाह्यधर्म है।

राजा भोज अलङ्कारों की तीन श्रेणियाँ गिनाते हैं :—शब्दाल
अर्थालङ्कार एवं उभयालङ्कार। किन्तु सामान्यतया अलङ्कार
प्रकार ही माने गये हैं—शब्दगुम्फन से सम्बन्धित शब्दालङ्कार औ
से सम्बन्धित अर्थालङ्कार। अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि शब्दालंका
कोटि में आते हैं और अर्थालङ्कार की श्रेणी में उपमा, अनन्वय,
रूपक, निदर्शना, अतिशयोक्ति, अप्रस्तुतप्रशंसा, प्रतिवस्तूपमा, दृ
व्यतिरेक, विभावना, विशेषोक्ति, विरोध, व्याजनिन्दा, सहोक्ति, परि
भाविक, काव्यलिङ्ग, समुच्चय, अनुमान, परिकर, परिसंख्या, क
सार, असङ्गति, समाध्याय, विषम, प्रत्यनीक, मीलित, स्मृति, भ्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ान्, प्रतीप, सामान्य, विशेष, अतद्गुण, व्याघात, संसृष्टि, संकर, सवत्, प्रेयः, ऊर्जस्वी, समाहित इत्यादि आते हैं।

इन अलङ्कारों के लक्षण और उदाहरण आदि में बहुत से आचार्य ामान्य रूप में मतैक्य रखते हैं, फिर भी इनमें कुछ न कुछ अन्तर भी ाया जाता है। आचार्य उद्भट ने अलङ्कारों का वर्गीकरण इस कार किया है—प्रथम वर्ग–उपमा और उसके भेद, द्वितीय वर्ग–र्थान्तरन्यास आदि, तृतीय वर्ग–यथासंख्य आदि, चतुर्थ वर्ग–रसवद लङ्कार, पञ्चम वर्ग–अपह्नुति आदि, षष्ठ वर्ग–सन्देह, संसृष्टि आदि।

इन अलङ्कारों के क्रमिक विकास के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि कसी भी रचना को 'काव्य' की पदवी से सुशोभित होने हेतु उसमें लङ्कारों की प्रधानता आवश्यक तत्त्व है। इसीलिए कहा गया है :—

काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्, सालङ्कारस्य काव्यता।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अलङ्कारानुक्रमणिका

अलङ्कारनामानि पृष्ठा

१. अनुप्रासः
२. यमकम्
३. उपमा
४. अनन्वयः
५. रूपकम्
६. उल्लेखः
७. अपह्नुतिः
८. उत्प्रेक्षा
९. काव्यलिङ्गम्
१०. अतिशयोक्तिः
११. तुल्ययोगिता
१२. दृष्टान्तः
१३. व्यतिरेकः
१४. श्लेषः
१५. अर्थान्तरन्यासः
१६. पर्यायोक्तिः
१७. विरोधाभासः
१८. विभावना
१९. विशेषोक्तिः
२०. असङ्गतिः
२१. अन्योन्यम्
२२. प्रतीपम्
२३. स्वभावोक्तिः
२४. संसृष्टिः
२५ सङ्करः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अलङ्कार-प्रवेशिका

१. अनुप्रासः (साहित्यदर्पणः)

लक्षणम्—"अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत् ।"

अयमाशयः—स्वरस्य वैषम्येऽपि यत्र शब्दसाम्यं भवति तत्रानुप्रास नामा शब्दालङ्कारो भवति। अस्मिन्नलङ्कारे शब्दसाम्यमात्रमेव गृह्यते, नान्यत्। साम्यशब्दस्यात्र आवृत्तिरर्थः न तु तुलना। अर्थात् स्वरस्य वेदेऽपि यत्र वर्णस्य वर्णसमूहस्य वाऽऽवृत्तिर्भवति तत्रानुप्रासालङ्कारो भवतीति ज्ञेयम्। स चानुप्रासः पञ्चप्रकारको, तथाहि छेकाऽनुप्रासः, वृत्यनुप्रासः श्रुत्यनुप्रासः, अन्त्याऽनुप्रासः, लाटानुप्रासश्चेति।

उदाहरणं यथा—उन्मीलन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्याधूतचूताङ्कुर-

क्रीडत्कोकिलकाकलीकलकलैरुद्गीर्णकर्णज्वराः ।

नीयन्ते पथिकैः कथं कथमपि ध्यानावधानक्षण-

प्राप्तप्राणसमासमागमरसोल्लासैरमी वासराः ॥

अत्र कथं कथं, समा समा' इत्यादिपदानां 'क' 'ल' 'व' इत्यादिवर्णानां च पुनः पुनरावृत्त्याऽनुप्रासोऽलंकारो दृश्यते।

हिन्दी—स्वर की विषमता अर्थात् असमानता होने पर भी व्यञ्जन (शब्द) मात्र के साम्य को अनुप्रास कहते हैं। इसमें अर्थ की प्रधानता न होने से ही लक्षण में मात्र 'शब्दसाम्य' का उल्लेख किया गया है। साम्य शब्द से 'आवृत्ति' लक्षित है न कि तुलना। अभिप्राय यह है कि स्वरमात्र के भेद होते हुए भी शब्द (वर्ण अथवा वर्णसमूहों) की जहाँ अनेकशः आवृत्ति होती है वहाँ अनुप्रास अलङ्कार होता है।

/a,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदाहरणार्थं 'उन्मीलन्मधु—इत्यादि जयदेवकृत गीतगोविन्द का वसन्त वर्णन परक श्लोक है। इस श्लोक में दूसरे चरण में "क" और। "ल" की बार-वार उसी क्रम से आवृत्ति हुई है प्रथम चरण में धकार की अनेकशः आवृत्ति हुई है। तृतीय एवं चतुर्थ चरण में "कथं" एवं "समा" की आवृत्ति होने से यहाँ अनुप्रास अलंकार है।

(२) अनुप्रासः (चन्द्रालोकः)

लक्षणोदाहरणे—वैषम्येऽपि स्वरस्यानुप्रासः स्याच्छब्दसाम्यभृत्।
समासिदत्साद्रितेति पद्यभागे उदाहृतिः ॥

अयमाशयः—स्वरस्य भेदेऽपि शब्दसाम्यभृत् अनुप्रासः भवतीति। अर्थात्—यत्र शब्द समुदायार्थो वारम्वारमुत्तमन्यासः तत्र अनुप्रास इति। अस्योदाहरणं तु "उन्मीलन्मधु—"इति जयदेवकृतगीतगोविन्द-श्लोकः। अत्र 'कथं कथं, समा–समा' इति शब्दावृत्याऽनुप्रासः। 'क' 'ल' वर्णस्यावृत्याऽपि अनुप्रासो जायते।

हिन्दी—स्वरों के वैषम्य रहने पर भी शब्दमात्र की जहाँ बार–बार आवृत्ति होती है उसे अनुप्रास कहते हैं। उदाहरणार्थ जयदेवकृत गीत-गोविन्द के 'उन्मीलन्मधु–' इत्यादि पद्य में 'कथं समा' पद्यों के आवृत्ति से अनुप्रास अलंकार स्पष्ट हैं। 'क' 'ल' वर्णों की आवृत्ति से भी यहाँ अनुप्रास अलंकार ही है।

(२) यमकम् (साहित्यदर्पणः)

"सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यञ्जनसंहतेः।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते ॥"

अयम्भावः अर्थे सति भिन्नार्थत्वेन स्वरव्यञ्जनसंहतेः तेनैव क्रमेण पुनरूच्चारणं यमकनामकोऽलङ्कारः। यमकालङ्कारे आवृत्तपदानां

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्वचित्सार्थकत्वं क्वचिन्निरर्थकत्वम्। क्वचिदेकस्य सार्थकत्वमपरस्य निरर्थकत्वम्। क्वचिदुभयोः सार्थकत्वं क्वचिदुभयोः निरर्थकत्वम्। क्वचिदेकस्य सार्थकत्वमपरस्य निरर्थकत्वम्। उदाहरणं यथा—

"नवपलाश–पलाशवनं पुरः स्फुटपराग–परागत–पङ्कजम्।
मृदुल–तान्त–लतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोहरैः॥"

अत्रास्मिन्नुदाहरणे शब्दावृत्तिः। "पलाश–पलाश०" "पराग–परा०" "लतान्त–लतान्त०" "सुरभिं–सुरभिम्" अथवा "रभिंसु–रभिं" इत्यादि एकैकपदानामेव द्विर्द्विरुच्चारणादिदं पद्यं यमकालङ्कारस्योदाहरणम्। अत्र प्रथमपलाशपदस्य पत्रवाचकत्वाद्द्वितीयस्य च किंशुकवृक्षवाचकत्वाद्द्वयोः सार्थकत्वमेवमेव "सुरभिं सुरभिम्" इत्यत्र प्रथमसुरभिपदस्य वसन्तवाचकत्वात् द्वितीयस्य च सुगन्धिवाचकत्वाद्द्वयोरेव सार्थकत्वम्। एवमेव "लतान्त–लतान्त" इत्यत्र पूर्वपदस्य मृदुपदेन सम्बद्धत्वानिरर्थकत्वं द्वितीयस्य सार्थकत्वं अपि च "पराग–पराग–" इत्यत्र प्रथमपदस्य सार्थकत्वं द्वितीयपदस्य "त" इति वर्णेन सम्बन्धान्निरर्थकत्वम्। रभिं सुरभिं सु इत्यत्र द्वयोरपि पदांशयोन्निरर्थकत्वमिति।

हिन्दी—अर्थ के होने पर भिन्न अर्थवाले स्वरों और व्यञ्जनो के समुदाय की पूर्वक्रम से आवृत्ति होने पर यमक अलंकार होता है। इसमें आवृत्त दोनों पदो में कहीं सार्थकता होती है। और कहीं निरर्थकता होती है और कहीं एक पद की सार्थकता और दूसरे पद की निरर्थकता होती है। कहीं दोनों पद सार्थक होते हैं और कहीं दोनों पद निरर्थक होते हैं। जैसे—"नवपलाश–पलाशवनं–" इत्यादि।

श्लोकार्थ यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने आगे नये पत्तों वाले पलाश वृक्ष के वन जिसमें उत्पन्न होते हैं, पुष्पचूर्णों से व्याप्त विकसित कमलों से युक्त, कोमल और धूप से क्लान्त लताओं के प्रान्तभाग से संयुक्त और पुष्पों के समूह से सुगन्धपूर्ण वसन्त ऋतु को देखा।"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(२) यमकम् (चन्द्रालोकः)

"आवृत्तवर्णस्तबकं स्तवकन्दाङ्कुरं कवेः।
यमकं प्रथमा धुर्यमाधुर्यवचसो विदुः॥"

अयमाशयः—प्राचीनाः विद्वांसः स्तुतिबीजप्रकाशकवर्णसमूहानामावृत्तिः यमकालङ्कारो मन्यते यतो हि धुर्यं प्रेष्ठमाद्यं वा तस्य माधुर्यवचसः येषां ते प्रथमाः प्राचीनाः विद्वांसः=कवयः, तस्य आधुनिकस्य वर्त्तमानकालिकस्य प्रशंसाभाजना भवन्ति तेषामेव प्राचीनकविप्रयुक्तवर्णस्तवकानामाधुनिककाव्ये आवृत्तेः। अर्थात् यत्र वर्णानां समूहः सम आवर्त्यते तत्र यमकमिति भावः। अस्य अनेके भेदाः।

अस्योदाहरणमपि इदमेव पद्यम्। यथाऽत्रैव "स्तबकं-स्तबकं, माधुर्यं-माधुर्यं" इत्याद्यंशे वर्णसमूहस्य समस्यावृत्तेरिदं यमकम्।

हिन्दी—प्रस्तुत श्लोक में पदावृत्ति है। यहाँ "पलाश-पलाश" और "सुरभि सुरभि" दोनों ही पद सार्थक हैं। "लतान्तलतान्त" में प्रथम निरर्थक एवं दूसरा सार्थक है। "पराग पराग" में प्रथम सार्थक और दूसरा निरर्थक है। "लतान्त-लतान्त" में भी प्रथम निरर्थक एवं द्वितीय सार्थक है। "रभि सुरभि सु" यहाँ दोनों ही निरर्थक है। अतएव यहाँ यमक अलंकार है।

प्राचीन मधुरभाषी विद्वानों ने कवि के प्रशंसारुप बीज के अङ्कुरवाले वर्णसमूहों की आवृत्ति को यमक अलंकार माना है। इसके अनेको भेद होते हैं।

उदाहरणार्थ लक्षणश्लोक में ही "स्तबक-स्तबक" "माधुर्य-माधुर्य" इन दोनों स्थानों पर वर्णसमूहों की आवृत्ति होने के कारण यमक अलंकार है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(३) उपमा (साहित्यदर्पणः)

"साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः"।

अर्थात् एकस्मिन्नेव वाक्ये द्वयोरुपमानोपमेययोः वैधर्म्यरहितं = साधर्म्ययुक्तं वाच्यम् = इवादिभिर्निपातैः, क्यङादिभिः प्रत्ययैः उपमितादिभिः समासैर्वा प्रतिपाद्यं साम्यं यत्र प्रतिपादितं भवति तत्र उपमाऽलङ्कारो भवति। सा श्रौत्यार्थीभेदेन मुख्यतया द्विविधा उदाहरणं यथा–

"मुखमिन्दुर्यथा पाणिः पल्लवेन समः प्रिये।
वाचः सुधा इवौष्ठस्ते बिम्बतुल्यो मनोऽश्मवत् ॥"

अत्रः नायकः नायिकामुद्दिश्य तस्याः सौन्दर्यं वर्णयति। अस्यायमर्थः हे प्रिये! तव मुखं इन्दुसदृशम्, करः पल्लवसमम्, वाचः अमृतसमम्, अधरः विम्बिफलसमम् मनः प्रस्तरसममस्तीति। अत्र साधारणधर्मस्यानुपात्तत्वात् लुप्तोपमा जायते।

अत्र मुखस्य इन्दुना, पाणेः पल्लवेन, वाचः सुधया, ओष्ठस्य बिम्ब फलेन, मनसः प्रस्तरेण साम्यं प्रतिपादितम्। साधर्म्येण वाचकानां शब्दानां प्रयोगः उपमा। अत्र मुखादयः उपमेयम्, इन्द्वादयो उपमानम् यथादयो वाचका, अनुपात्ता अपि सौन्दर्याढ्यः साधारणधर्माः सन्ति। अतोऽत्र उपमालङ्कारः।

हिन्दी—जहाँ एक ही वाक्य में उपमान और उपमेय दो पदार्थों का वैधर्म्य रहित इवादि वाचक शब्दों द्वारा सादृश्य वर्णित हो वहाँ उपमा अलंकार होता है। यह श्रौत और आर्थी के भेद से मुख्यतः दो प्रकार का होता है।

उदाहरणार्थ—"हे प्रिये! तुम्हारा मुख चन्द्रमा के समान, हाथ पल्लव के समान वाणी अमृत के समान, ओष्ठ बिम्ब फल के समान तथा मन पत्थर के समान है।"

यहाँ मुख का इन्दु से, पाणि का पल्लव से, वाणी का सुधा से, ओष्ठ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का बिम्बफल से तथा मन का पत्थर से साम्य प्रतिपादन किया गया है। साधर्म्येण वाचक यथा, इव, तुल्य, सम इत्यादि शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। अतः यहाँ उपमा अलंकार है। प्रस्तुत पद्य में मुख आदि उपमेय, चन्द्र आदि उपमान, यथा आदि वाचक शब्द तथा शब्दतः अप्रयुक्त होने पर भी सौन्दर्य आदि साधारण धर्म है। यहाँ "सौन्दर्यादि साधारण धर्म के शब्दोपात्त न होने कारण लुप्तोपमा" नामक उपमा अलंकार है।

उपमा (चन्द्रालोकः)

"उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः।
हृदये खेलतोरुच्चैस्तन्वङ्गीस्तनयोरिव ॥"

यत्र काव्ये द्वयोः—उपमानोपमेययोः मिथो भिन्नयोः सादृश्यलक्ष्मीः= चमत्कारसादृश्यं वाच्यतया प्रकटमेवावभासते तत्रोपमालङ्कारो भवतीति। यदीयं सादृश्यमन्यत्र वर्ण्यते तत् उपमानम्। यस्मिन् सादृश्यमन्यस्य वर्ण्यते तदुपमेयम्। सादृश्यं तु तद्भिन्नत्वे सति तद्गतभूतयोः धर्मवत्त्वम्। सादृश्यव्यञ्जकाश्च शब्दा इवादयः। यत्र सर्वेऽप्यमी वर्त्तन्ते तत्र पूर्णोपमा। यत्र चैतेषु कस्याप्येकस्य लोपो भवति तत्र लुप्तोपमेति।

उदाहरणन्तु अस्य पद्यस्य द्वितीयपादम्। अर्थस्तु हृदये = वक्षसि खेलतो — समुच्छलतोः तन्वङ्ग्याः उन्नतयोः स्तनयोः इव उपमानोपमेययोः सादृश्यलक्ष्मीः प्रकाशते अतएवात्र उपमालंकारः। यतोहि तन्वङ्ग्याः वक्षसि उन्नतस्तनयोः मिथः सादृश्यं चमत्कारकारि भवति। अत्र एकः स्तनः उपमानमपरः स्तनः उपमेयम्, हृदये समुच्छलन द्वयोः साधारणधर्मः, इवेत्युपमावाचकः शब्दः। अस्या उपमायाः पूर्णत्वलुप्तत्वप्रयुक्ता अनेके भेदाः सन्तीति।

हिन्दी—नायिका के वक्षःस्थल पर खेलते हुए उभड़े स्तनों की तरह जहाँ उपमान और उपमेय दोनों की समानता की शोभा विकसित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मनोज गर्ग

हो वहाँ उपमा अलंकार होता है। उपमान, उममेय, साधारण धर्म और उपमावाचकः शब्द ये चारो जहाँ शब्दतः प्रतिपादित हों वहाँ पूर्णोपमा होती है, जहाँ इनमें से एक का भी अभाव दृष्टिगोचर हो वहाँ लुप्तोपमा होती है। जिससे समानता बतायी जाय उसे उपमान कहते हैं। जिसमें समानता बतायी जाय उसे उपमेय कहते हैं। जो उपमान और उपमेय दोनों में समान रूप से रहता हो उसे साधारण धर्म कहते हैं। समानता बोधक इव आदि शब्द उपमावाचक शब्द कहे जाते हैं।

उदाहरणार्थ प्रस्तुत लक्षणश्लोक में ही नायिका के वक्षः स्थल पर उन्नत स्तनों की समानता प्रदर्शित किये जाने से यहाँ उपमा अलंकार है।

(४) अनन्वय (साहित्यदर्पणः)

"उपमानोपमेयत्वमेकस्यैव त्वनन्वयः"।

यत्र एक वाक्ये एकस्यैव पदार्थस्य उपमानोपमेयत्वमुभयमपि भवति तत्र अनन्वयालङ्कारः। भवतीति। यथा—

"राजीवमिव राजीवं, जलं जलमिवाजनि।
चन्द्रश्चन्द्र इवातन्द्र, शरत्समुदयोद्यमे॥"

अर्थात् शरत्प्रादुर्भाव प्रवृत्तौ राजीवं राजीवमिव जलं जलमिव, चन्द्रः चन्द्र इव निर्मलः जातः इति। अत्र राजीवादीनां राजीवाद्यभिन्न-तुल्यत्वप्रतिपादनार्थम् उपमानोपमेयत्वमारोप्य विवक्षितः, अतोऽत्रा-नन्वयालङ्कार इति।

हिन्दी—जहाँ एक वाक्य में एक ही पदार्थ उपमान और उपमेय दोनों हो वहाँ अनन्वय अलंकार होता है।

उदाहरणार्थ "राजीवमिव" इत्यादि श्लोक में राजीव राजीव के समान, जल जल के समान चन्द्र चन्द्र के समान है अर्थात् इनके समान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूसरा कोई नहीं है। इस प्रकार अन्य पदार्थ से समानता न होने के कारण यहाँ अनन्वय अलंकार है।

अनन्वय (चन्द्रा लोकः)

"उपमानोपमेयत्वे यत्रैकस्यैव जाग्रतः।
इन्दुरिन्दुरिवेत्यादौ भवेदेवमनन्वयः॥"

यत्र एकस्यैव उपमानमुपमेयत्वञ्च भवतः तत्रानन्वयोऽलंकारः। अर्थात् यदा उपमेयं स्वस्य लोकोत्तरगुणवत्तया उपमानान्तरमलभमानं सदात्मानमेवोपमानत्वेन अङ्गीकुरुते तदा स्वस्य स्वस्मिन्नुपमानत्वेन अन्वयाऽयोगाऽनन्वय इत्यनन्वयालंकारो भवतीति। यथा— "इन्दुरिन्दुरिव"।

अत्र इन्दोस्तथाविधलोकोत्तराह्लादजनकत्वेनोपमानाभावात्स्वोपमानत्वं स्वस्यैव कल्पितमित्यनन्वयालंकार इति। अर्थात् इन्दुसदृशमाह्लादकान्तरं नास्तीति।

हिन्दी—जहाँ उपमान और उपमेय दोनों एक हो हों वहाँ अनन्वय अलंकार होता है। जैसे "चन्द्र चन्द्र के समाने ही है।" यहाँ चन्द्र की उपमा दूसरे किसी से न होने के कारण अनन्वय अलंकार है। यहाँ उपमान और उपमेय दोनों चन्द्र ही हैं।

(५) रूपकम् (साहित्यदर्पणः)

"रूपकं रूपितारोपाद्विषये निरपह्नवे।"

यत्र निषेधरहिते विषये उपयेमे रूपितस्योपमानस्य, आरोपः—तादात्म्याऽध्यासः जायते तत्र रूपकालंकारो भवतीति। तद्रूपकं परम्परितसाङ्गनिरङ्गभेदेन त्रिप्रकारकः। यथा—"मुखं चन्द्रः" इति। अत्रोपमेये मुखे उपमानस्य चन्द्रारोपाद्रूपकमिति। उदाहरणान्तरं यथा—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पद्मोदयदिनाधीशः सदागतिसमीरणः।
भूभृदावलिदम्भोलिरेक एव भवान् भुवि ॥

पद्येनानेन कश्चित्कविः कञ्चिद्राजानं प्रशंसति । अत्र पद्मायाः लक्ष्म्याः उदये पद्मानां कमलानां उदयस्य, सतां सज्जनानामागतौ सदा सर्वदा आगतेः, भूभृत्सु राजसु भूभृतां पर्वतानां आरोपात् राजनिदिनाधीश-समीरणदम्भोल्यादीनामारोपात् रूपकालङ्कारः । अत्रैकस्मिन् राजनि अनेकेषामारापात् मालारूपकमिति ।

हिन्दी—उपमेय के शब्दोपात्त रहने पर जहाँ उपमेय में उपमान का आरोप होता है वहाँ रूपक अलंकार होता है । जैसे मुखं चन्द्रः यहाँ उपमेय मुख में उपमान चन्द्रमा का आरोप दोने से रूपक अलंकार है । अन्य उदाहरण "पद्मोदय" इत्यादि में पद्मा मे पद्म का सदागति (सज्जनों का आगमन) मे सदा गति का एवं राजपंक्ति में पर्वतपंक्ति का आरोप दोने के कारण यहाँ रूपक अलंकार है ।

रूपकम् (चन्द्रालोकः)

"यत्रोपमानचित्रेण सर्वथाप्युपरज्यते ।,,
उपमेयमयी भित्तिस्तत्र रूपकमिष्यते ॥"

यत्र उपमानमेव चित्रमुपमानचित्रं तेन उपमानरूपचित्रेण उपमेय-रूपा भित्तिः सर्वथा स्वतादात्म्येनैवोपरज्यते तत्र रूपकं भवति । गुण-साम्यादुपमानोपमेययोरभेदारोपेण एकतां नयतीति रूपकम् । अयम्भावः-यथास्थिते उपमेये उपमानस्याभेदरोपो रूपकालंकारो भवतीति । यथा-उपमानमेव चित्रं, उपमेयमंयी एव भित्तिरिति, उपमाने चित्रस्य उपमेये भित्तेः आरोपणाद्रूपकालंकार इति ।

हिन्दी—जहाँ उपमान रूप चित्र से उपमेयरूप चित्र सर्वथा मिला हुआ हो अर्थात् उपमान और उपमेय में एकता प्रतीत हो वहाँ 'रूपक'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अलंकार होता है। उदाहरणार्थ उपर्युक्त लक्षण श्लोक में ही "उपमान-चित्रेण" में उपमान में चित्र का आरोप और "उपमेयमयी" में उपमेय में भित्ति का आरोप करने से इन दोनों में एकत्व-प्रतीति होने से यहां 'रूपक' अलंकार है।

(६) उल्लेखः (साहित्यदर्पणः)

लक्षणम्—"क्वचिद् भेदाद् ग्रहीतॄणां विषयाणां तथा क्वचित्।
एकस्यानेकधोल्लेखो यः स उल्लेख उच्यते॥

अयमाशयः यत् कुत्रचित् स्थले ग्रहीतॄणां=ज्ञातॄणां भेदात्=प्रकारात् अपि च क्वचित् विषयाणां = हेत्ववच्छेदकानां धर्माणां भेदात् एकस्य= पदार्थस्य अनेकधा = नानाप्रकारेण उल्लेखः = अवधारणं भवति तत्र उल्लेखनामकोऽलङ्कारो भवतीति।

उदाहरणं यथा—

"प्रिय इति गोपवधूभिः शिशुरिति वृद्धै रधीश इति देवैः।
नारायण इति भक्तैर्ब्रह्मेत्यग्राहि योगिभिर्देवः॥"

/ उदाहरणेऽस्मिन् यदा भगवान् कृष्णः कंसस्य रङ्गशालायां गतस्तदा तत्तज्जनमनोभावान्वर्णयति कश्चित्कविः। श्लोकेऽस्मिन् भगवान् कृष्णः गोपवधूभिः प्रियत्वेन, वृद्धैः बालत्वेन, इन्द्रादिभिर्देवैः स्वामीत्वेन, अक्रूरादिभिः भक्तैः नारायणत्वेन योगिभिः ब्रह्मत्वेन ज्ञातः। अत्रैकस्य भगवतो श्रीकृष्णस्य गोपादिग्रहीतृभेदादनेकधोल्लेखात् उल्लेखालंकारः स्पष्ट इति।

हिन्दी—कहीं ग्रहीता के भेद से और कहीं विषयों के भेद से एक पदार्थ का अनेक प्रकार से उल्लेख होता है वहां उल्लेख अलंकार होता है।

उदाहरणार्थ "प्रिय इति गोप" इत्यादि श्लोक में भगवान् कृष्ण को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोपियों ने वल्लभरूप में, वृद्धों ने बालक रूप में, देवताओं ने स्वामी के रूप में, भक्तों ने नारायण के रूप में योगियों ने ब्रह्म के रूप में समझा। अतः यहाँ एक कृष्ण का अनेक रूप में उल्लेख होने से यहाँ उल्लेख अलंकार है।

उल्लेखः (चन्द्रालोकः)

"बहुभिर्बहुधोल्लेखादेकस्योल्लेखिता मता।
स्त्रीभिः काम-प्रियैश्चन्द्रः कालः शत्रुभिरैक्षि सः॥"

अयम्भावः—यत्र एकस्य पदार्थस्य बहुत्वेन उल्लेखो जायते तत्रोल्लेखाऽलंकारो भवतीति तथाहि—एकस्मिन्नारोपविषयेऽनेककर्तृकोऽनेकरूपारोप उल्लेख इति।

उदाहरणन्तु लक्षणपद्ये एव द्वितीयपदम्। तथाहि—सः स्त्रीभिः कामत्वेन, प्रियैश्चन्द्रत्वेन शत्रुभिः कालत्वेन दृष्टः। अत्र एकस्य राज्ञः स्त्रीप्रिय शत्रुभिः बहुभि; कामत्वचन्द्रत्वकालत्वरूपानेक प्रकारकतयोल्लेखादुल्लेखालंकारो जातः इति।

हिन्दी—जहाँ एक वस्तु का अनेकों द्वारा अनेक प्रकार से वर्णन किया जाय वहाँ उल्लेख अलंकार होता है। जैसे लक्षण श्लोक के द्वितीय पाद में—"उसे स्त्रियों ने कामरूप से प्रियजनों ने चन्द्ररूप से शत्रुओं ने कालरूप से देखा।" यहाँ पर एक ही व्यक्ति में कामत्व, चन्द्रत्व तथा कालत्व का आरोप होने से यहाँ उल्लेख अलंकार है।

(७) अपह्नुतिः (साहित्यदर्पणः)

लक्षणम्—"प्रकृतं प्रतिषिध्यान्यस्थापनं स्यादपह्नुतिः।

अर्थात् यत्र प्रकृतमुपमेयं प्रतिषिध्य अन्यस्य प्रकृतभिन्नस्य उपमानस्य स्थापनं भवति तत्रापह्नुतिरलंकारो भवतीति। सा चापह्नुतिः मालाकेवलरूपा द्विविधा भवति। उदाहरणं यथा—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"नेदं नभोमण्डलमम्बुराशिर्नैताश्च तारा नवफेनभङ्गाः ।
नायं शशी कुण्डलितः फणीन्द्रो नासौकलङ्कः शयितो मुरारिः ॥

अस्यायमर्थः—इदं दृश्यमानं वस्तु नाकाशमण्डलं किन्तु समुद्र एव। एषाः तारा: न:, किन्तु नवफेनभङ्गा एव। अयं नैव चन्द्रमा अपितु कुण्डलीभूतः भुजगेश्वरः, असौ न कलङ्क अपितु सुप्तो भगवान्विष्णुरिति अत्र नभोमण्डलं प्रतिषिध्य समुद्रस्य, नक्षत्राणि प्रतिषिध्य नवफेन समूहस्य, चन्द्रं प्रतिषिध्य नागराजस्य कलङ्कं निषिध्य भगवतः विष्णोः प्रतिपादनात् अपह्नुतिरलंकारः।

हिन्दी—जहाँ प्रकृत उपमेय—का निषेध करके अन्य–उपमान का आरोप प्रतिपादन—किया जाय वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है। उदाहरणार्थ—"नेदं नभोमण्डलम्" इत्यादि श्लोक में "यह नभोमण्डल नहीं बल्कि समुद्र है, ये तारायें नहीं अपितु नवीन फेन के टुकड़े हैं, यह चन्द्रमा नहीं अपितु कुण्डलित सर्प है, यह कलङ्क नहीं अपितु शेषनाग पर सोये भगवान् विष्णु हैं।"–यहाँ पर नभोमण्डल का प्रतिषेध कर समुद्र का, नक्षत्रों का प्रतिषेध कर नवफेन समूह का, चन्द्र का प्रतिषेध कर कुण्डलित सर्प का और कलङ्क का प्रतिषेध कर भगवान् विष्णु का स्थापन होने से अपह्नुति अलंकार है।

अपह्नुतिः (चन्द्रालोकः)

"अतथ्यमारोपयितुं तथ्यापास्तिरपह्नुतिः ।
नायं सुधांशुः किं तर्हि व्योमगङ्गासरोरुहम् ॥"

अस्यायमर्थ यत्—यत्र अतथ्यं = असत्यं आरोपयितुं तथ्यस्य = सत्यस्य अपास्तिः=निषेधः क्रियते तत्रापह्नुतिरलंकारो जायते। अर्थात् तथ्यापामनपूर्वकात्तथ्यारोपणमपह्नुतिरिति। उदाहरणार्थं प्रस्तुते एव लक्षणपद्ये द्वितीयपादे—"अयं = पुरोदृश्यमानः पदार्थः सुधांशुः = चन्द्रः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नास्ति तर्हि किमिति पृच्छायामुत्तरयति व्योमगङ्गासरोरुहमस्तीति।"—अत्र प्रकृतं सुधांशुं निषिध्य तत्र व्योमगङ्गासरोरुहारोपात् सुधांशौ सुधांशुत्वस्य निह्नवः, गङ्गासरोरुहत्वारोपश्च फलति। तस्मात् सुधांशुत्वावच्छिन्ने प्रकृते पदार्थे सुधांशुत्वावच्छेदकनिषेधसामानाधिकरण्येनारोप्यमाणसरोरुहतादात्म्यादपह्नुतिरलंकारोऽत्र।

हिन्दी—जहाँ किसी अतथ्य अर्थात् असत्य वस्तु के आरोप के लिए तथ्य अर्थात् सत्य को छिपाया जाय वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है। उदाहरणार्थ—"यह सुधांशु नहीं बल्कि आकाशगंगा का कमल है।" यहाँ पर कमलत्व का आरोप करने के लिए चन्द्रत्व को छिपाया (निषेध किया) गया है; अतएव यहाँ 'अपह्नुति' अलंकार है।

(८) उत्प्रेक्षा (साहित्यदर्पणः)

लक्षणम्—"भवेत्सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।
वाच्या प्रतीयमाना सा प्रथमं द्विविधा मता।
वाच्येवादिप्रयोगे स्यादप्रयोगे परा पुनः॥"

अस्यायमर्थः—प्रकृतस्य = वर्णनीयस्योपमेयस्य परात्मना—उपमानरूपेण सम्भावना उत्प्रेक्षा भवतीति। सा चोत्प्रेक्षा प्रथमं वाच्या, प्रतीयमाना चेति भेदेन द्विविधा भवति। तत्र इवादिशब्दप्रयोगे वाच्या स्यात्, वाच्या शाब्दी, प्रतीयमाना आर्थी। उत्प्रेक्षाद्योतका शब्दाः यथा—"मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादयः।"

तत्र इवादिशब्दा प्रयोगे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा भवतीति।

उदाहरणं यथा—"तन्वङ्ग्याः स्तनयुग्मेन मुखं न प्रकटीकृतम्।
हाराय गुणिने स्थानं न दत्तमिति लज्जया॥"

अस्यायमर्थः—तन्वङ्ग्याः कुचयुगलेन सूत्रयुक्ताय विद्याविनयादिगुणशालिने जनाय च हाराय स्थानं न दत्तः इति लज्जया मुखं न

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशितमिति। अत्र इवाद्युत्प्रेक्षाद्योतकशब्दाभावात् लज्जाया गुणत्वा-त्प्रतीयमाना गुणोत्प्रेक्षा अस्तीति। सा चेयमुत्प्रेक्षा नानाभेदेन द्वात्रिंशत्संख्यका भवतीति।

हिन्दी—जहाँ प्रकृत–उपमेय—का अप्रकृत–उपमान—स्वरूप से सम्भावना व्यक्त की जाय वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। मुख्यतः इसके वाच्या और प्रतीयमाना—दो भेद होते हैं। इव आदि शब्दों के प्रयोग में वाच्या और उसके अप्रयोग में प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा होती है। "मन्ये, शंके, ध्रुवं, प्रायः, नूनम् तथा इव ये उत्प्रेक्षावाचक शब्द हैं।

उदाहरणार्थ—"तन्वङ्ग्याः स्तनयुग्मेन"—। अर्थात् "कृशाङ्गी के दो स्तनों ने गुण (सूत्र अथवा विद्या-विनय आदि गुण) से युक्त गुणी हार को स्थान नहीं दिया इस लज्जा से मानों मुख को प्रकट नहीं किया।" यहाँ "लज्जया" इस पद के अनन्तर "इव" आदि उत्प्रेक्षा-वाचक शब्द के अभाव से प्रतीयमानोत्प्रेक्षा अलंकार है।

यह उत्प्रेक्षा विभिन्न प्रकार से ३२ (बत्तीस) प्रकार की होती है।

उत्प्रेक्षा (चन्द्रालोकः)

"उत्प्रेक्षोन्नीयते यत्र हेत्वादिर्निह्नुतिं विना।
त्वन्मुखश्रीकृते नूनं पद्मैर्वैरायते शशी॥

इवादिकपदाभावे गूढोत्प्रेक्षा प्रचक्षते।
त्वत्कीर्तिर्विभ्रमश्रान्ता विवेश स्वर्गनिम्नगाम्॥"

अर्थात् यत्र स्थले निह्नुतिं - निषेधं विनैव हेत्वादि = हेतुफल-स्वरूपादिः उन्नीयते = सम्भाव्यते तत्र उत्प्रेक्षा अवगन्तव्यमिति। सा चोत्प्रेक्षा हेतुफलस्वरूपभेदात्त्रिधा भवतीति प्रथमस्योदाहरणं यथा—"त्वन्मुखश्रीकृते नूनं पद्मैर्वैरायते शशी" इति। अर्थात् "त्वदीयाननस्म श्रीकृते पद्मैः - कमलं वैरायते=वैरं करोतीति"। अत्र चन्द्रपद्मयोर्वि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रोधः स्वाभाविकः, मुखेकान्तिलिप्साहेतुको नास्ति, तथापि तद्धेतुकत्वेन सम्भावनाद्धेतूत्प्रेक्षा, तथैवानयोर्विरोधेऽफलस्यापि कान्तावदनप्राप्तेः फलत्वेन उत्प्रेक्षणात्फलोत्प्रेक्षा। एवमेव वस्तुतो वैराकर्तर्यपि शशिनि पद्मसंकोचकत्वनिमित्तेन वैरकर्तृतादात्म्योत्प्रेक्षणात् स्वरूपोत्प्रेक्षा च अस्तीति। मन्ये, शंके ध्रुवं, प्रायो, नूनमित्यादीनां उत्प्रेक्षावाचकशब्दानां अभावे सति यत्र निह्नुति विना हेत्वादे उन्नयन तत्र गूढोत्प्रेक्षां = प्रतीयमानोत्प्रेक्षां कथयन्तीति। उदाहरणं यथा—"विभ्रमश्रान्ता—" इत्यादि। यथा कश्चन पुरुषः भ्रमणेन भृशं श्रान्तः सन् नद्यां स्नात्वा श्रममपनयति तथैव सर्वलोकव्यापि तव यशोऽपि श्रान्तं सदिव स्नानाय मन्दाकिनीं विवेश। तत्र मूले उत्प्रेक्षावाचकेवादिपदानुपादानाद् गूढोत्प्रेक्षेति। अत्र कीर्तेः श्रमः अभवन्नपि श्रमहेतुत्वेनोत्प्रेक्षित इति हेतूत्प्रेक्षा। कीर्तौ प्रवेशनकर्तृकतादात्म्योत्प्रेक्षणात् स्वरूपोत्प्रेक्षा। अफलस्यापि गङ्गावगाहनस्य फलत्वेनोत्प्रेक्षणात् फलोत्प्रेक्षा च भवतीति।

हिन्दी—निषेध के बिना ही जहाँ कारण, फल और स्वरूप में अतिशय संशय किया जाय वहाँ उत्प्रेक्षा होती है। उदाहरणार्थ—"तेरे मुख की शोभा प्राप्त करने के लिए चन्द्रमा कमलों से शत्रुता करता है। यहाँ चन्द्रमा और कमल का वैर स्वतः सिद्ध होते हुए भी पद्मगत कान्तामुखशोभाप्राप्तिरूप कारण के लिए उसे कहा अतएव यहाँ हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है। कान्तामुख शोभा प्राप्ति चन्द्र के वैर फल न रहते हुए भी उसे फल कहने के कारण फलोत्प्रेक्षा है और चन्द्रोदय होने पर स्वयमेव कमल के संकुचित होने से चन्द्रमा का वैरकर्तृत्वरूप प्रतिपादित होने से स्वरूपोत्प्रेक्षा है। प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षावाचक "नूनं" शब्द प्रयुक्त होने से यहाँ वाच्योत्पेक्षा है। उत्प्रेक्षावाचक शब्दों के न रहने पर गूढोत्प्रेक्षा कही जाती है। उदाहरणार्थ—"हे राजन्! आपकी कीर्ति समस्त भुवन में भ्रमण करने से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रान्त होकर स्वर्गगंगा में स्नान करने के लिए प्रविष्ट हुई। यहाँ इवा उत्प्रेक्षावाचक शब्द के न रहने के कारण यहाँ गूढोत्प्रेक्षा है। कीर्ति निर्जीव होने के कारण उसके श्रम की सम्भावना न होने पर आकाशगंगा के स्नान को श्रम का कारण कहा अतः यह कारणोत्प्रेक्ष है। कीर्ति में प्रवेशनकर्तृक तादात्म्य की उत्प्रेक्षा करने से यह स्वरूपो त्प्रेक्षा है और गंगा स्नान करना कीर्ति का फल न होते हुए भी फल बताना फलोत्प्रेक्षा है।

(९) काव्यलिङ्गम् (साहित्यदर्पणः)

लक्षणम्—"हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते" ॥

अयमाशयः—हेतोः=कारणस्य वाक्यार्थत्वे पदार्थत्वे च काव्य लिङ्गनामाऽलंकारः अभिधीयते इति। तत्र क्रियाऽन्वयसमासौ वाक्यार्थ त्वम् अन्यथा पदार्थत्वम्। यत्र वाक्यार्थः पदार्थो वा हेतुर्भवति त काव्यलिङ्गमलंकारो भवतीति। अयमेव हेत्वलंकारोऽपि उच्यते।

उदाहरण यथा—यस्त्वन्नेत्रसमानकान्ति सलिले मग्नं तदिन्दीवरं
मेघैरन्तरितः प्रिये! तव मुखच्छायानुकारी शशी।
येऽपि त्वद्गमनानुकारिगतयस्ते राजहंसा गता-
स्त्वत्सादृश्यविनोदमात्रमपि मे दैवेन न क्षम्यते" ॥

हेतोर्वाक्यार्थतायामुदाहरणमिदं पद्यम्। वर्षतौ कान्ताविप्रयुक्त कस्यच्चित्प्रवासिनः उक्तिरियम्। अस्यायमर्थः—"हे प्रिये! त्वन्ने समानकान्तिरिव इन्दीवरं सलिले निमग्नः, तव मुखच्छायाऽनुका चन्द्रमाः मेघैः व्यवहितः, त्वद्गमनाऽनुसारिगतय राजहंसाः गताः, अ दैवेन मे अपि न क्षम्यते।" अत्र पद्ये चतुर्थपादप्रतिपाद्ये सादृश्यमा विनोदाऽभावे पादत्रयवाक्यानि कारणानि सन्ति। अतो वाक्यार्थ हेतु काव्यलिङ्गस्योदाहरणमिदम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दी—वाक्यार्थ अथवा पदार्थ किसी का हेतु हो तो वहाँ काव्यलिङ्ग अलंकार होता है। इसे हेतु अलंकार भी कहते हैं। उदाहरणार्थ—"यत्त्वन्नेत्रसमानकान्ति—" इत्यादि। अर्थात्—"हे प्रिये! तुम्हारे नेत्र के समान कान्तिवाला नीलकमल जल में डूब गया। तुम्हारे मुख की कान्ति का अनुकरण करने वाला चन्द्रमा मेघों से आच्छादित हो गया। तुम्हारी गति के समान गति वाले राजहंस भी चले गये। तुम्हारे सादृश्य से मेरे विनोदमात्र को भी भाग्य सहन नहीं करता है।" यहाँ चौथे चरण में तीन चरणों के वाक्य के हेतु होने के कारण वाक्यार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलंकार है।

काव्यलिङ्गम् (चन्द्रलोकः)

"स्यात्काव्यलिङ्गं वागर्थो नूतनार्थसमर्थकः।
जितोऽसि मन्दकन्दर्प मच्चित्तेऽस्ति त्रिलोचनः॥"

अर्थाद्यत्र नूतनस्यार्थस्य पदार्थवाक्यार्थान्यतमरूपबोधको वाच्य एव वाक्यार्थः पदार्थो वा स्यात्तत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारो भवतीति। उदाहरणं यथा "जितोऽसि मन्दकन्दर्प"—इत्यादि। हे मन्दकन्दर्प मम मनसि त्रिलोचनः = महादेवः अस्ति, अतस्त्वं जितोऽसीत्यर्थः। अत्र मच्चित्ते त्रिलोचनोऽस्तीति वाक्यार्थेन कामदाहशंकरतृतीयनेत्ररूपनवार्थप्रतीतिर्जायत इति वाक्यार्थहेतुकः काव्यलिङ्गमलंकार अस्तीति।

हिन्दी—जहाँ पदार्थ अथवा वाक्यार्थ के द्वारा किसी नवीन अर्थ का बोध होता है, वहाँ काव्यलिङ्ग अलंकार होता है।

उदाहरणार्थ—"जितोऽसि मन्दकन्दर्प"—इत्यादि। शब्दार्थ यह है कि हे मूढ कामदेव! मेरे मन-मन्दिर में त्रिलोचन भगवान् शंकर विराजमान हैं इसलिए मैंने तुझे जीत लिया है। यहाँ "मच्चित्तेऽस्ति त्रिलोचनः"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस वाक्यार्थ से कामदाहक भगवान् शंकर के अग्निमय तृतीय ने
रूप नवीन अर्थ की प्रतीति होने से काव्यलिङ्ग अलंकार है।

(१०) अतिशयोक्तिः (साहित्यदर्पणः)

लक्षणम्—"सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते।"

अयम्भावः—अध्यवसायस्य = आरोपस्य सिद्धत्वे = निश्चयरूप सति अतिशयोक्तिरलंकारो कथ्यते इति। अध्यवसायस्तु उपमेय स्वरूपगोपनेन उपमानस्याभेदज्ञानरूपम्। भेदेऽप्यभेदः सम्बन्धेऽसम्बन्ध त्यादिरूपेण अस्यालंकारस्य पञ्चभेदाः भवन्तीति। उदाहरणं यथा-

कथमुपरि कलापिनः कलापो विलसति? तस्य तलेऽष्टमिन्दुखण्डम्।
कुवलययुगलं ततो विलोलं तिलकुसुमं तदधः प्रवालमस्मात्॥

कस्याश्चित्सुन्दर्याः केशकलापादिवर्णनरूपं पद्यमिदम्। ऊर्ध्वभा मयूरपुंखाः शोभते, निम्नभागे तिलपुष्पम्, तिलकुसुमान्निम्नभागे प्रवालं केन प्रकारेण राजते इति भावः। अस्मिन्पद्ये कान्तायाः के पाशादेः मयूरकलापादिभिरभेदेनाध्यवसायः। तस्मादयं भेदेऽभेदा ध्यवसायरूपातिशयोक्तिरलङ्कारोऽस्तीति।

हिन्दी—अध्यवसाय के सिद्ध होने पर अतिशयोक्ति अलंकार हो है। उपमेय के स्वरूपगोपन से उपमान से उसके अभेदज्ञान को अध्य साय कहते हैं। भेद के होने पर भी अभेद, सम्बन्ध के होने पर असम्बन्ध इत्यादि के भेद से यह अतिशयोक्ति पाँच प्रकार की होती है।

उदाहरणार्थ—"कथमुपरि कलापिनः" इत्यादि। अर्थात् ऊपर मो का पंख शोभित हो रहा है, उसके नीचे अष्टमी का चन्द्रखण्ड, उस नीचे चञ्चल दो नीलकमल हैं, उसके नीचे तिल का फूल है और उस नीचे मूंगा किस प्रकार शोभित हो रहा है।

यहाँ पर सुन्दरी के केशपाश आदि का मोरपंख आदि से अभेद अध्यवसाय होने से भेद में अभेदरूपा अतिशयोक्ति अलंकार है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अतिशयोक्तिः (चन्द्रालोकः)

लक्षणम्—"रूपकातिशयोक्तिश्चेद्रूप्यं रूपकमध्यगम्।
पश्य नीलोत्पलद्वन्द्वान्निःसरन्ति शिताः शराः॥"

अर्थाद्यत्र रूप्यं = उपमेयं रूपकमध्यगं = विषयन्तःस्थितं, उपमानमध्यगे भवति तत्र रूपकातिशयोक्तिरलङ्कारो भवतीति। यत्र ...मानेनैवोपमेयस्य प्रतीतिर्भवति तत्र रूपकातिशयोक्तिरलंकारो ...प्रतीति। उदाहरणं तु—"पश्य, शराः = बाणाः, नीलोत्पलद्वन्द्वात् = ...लकमलमिथुनात् निःसरन्ति = निर्गच्छन्तीति।" नीलकमलसदृश... ...मिनीनेत्रयुगलात् अपाङ्गदृष्टयो निर्यान्तीति भावः। अत्र विषययोः ...त्रकटाक्षरूप्ययोः विषयिणोः नीलकमलरूपरूपकस्यान्तःपातितया ...द्रात्मनैवानयोः कार्यकारणभावकथनात् रूपकवाचिनीलोत्पलशर... ...शाभ्यामेव रूप्यवाचिनेत्रकटाक्षप्रतीतेरत्र रूपकातिशयोक्तिरलंकारोऽ... ...तीति।

हिन्दी—जहाँ रूप्य = उपमेय रूपक = उपमान के मध्य में रहे ...हाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार होता है। अर्थात् जहाँ उपमान के द्वारा ... उपमेय की प्रतीति हो वहाँ रूपकातिशयोक्ति नामक अलंकार ...ता है।

उदाहरणार्थ—"पश्य नीलोत्पलद्वन्द्वात्—" इत्यादि। अर्थात्—"देखो, ...लकमलयुगल से पैने बाण निकल रहे हैं"। यहाँ नेत्रयुगलरूप उपमेय, ...नीलोत्पलद्वन्द्वरूप तथा कटाक्षरूप उपमेय काले बाणरूप उपमान के ...मध्य निहित है। अतएव यहाँ रूपकातिशयोति अलंकार है।

१० तुल्ययोगिता (साहित्यदर्पणः)

लक्षणम्—"पदार्थानां प्रस्तुतानामन्येषां वा यदा भवेत्।
एकधर्माभिसम्बन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता॥"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यत्र प्रस्तुतानां - प्राकरणिकानां पदार्थानां - वस्तूनां अ अप्रस्तुतानां पदार्थानां गुणक्रियारूपैकधर्मेण सम्बन्धो भवति तत्र तु योगिताऽलङ्कारा भवतीति।

उदाहरणन्तु—

"अनुलेपनानि कुसुमान्यबलाः कृतमन्यवः पतिषु दीपदशाः।
समयेन तेन सुचिरं शयितप्रतिबोधितस्मरबोधिषत॥"

अस्यायमर्थः—"तेन समयेन अनुलेपनानि कुङ्कुमचन्दना पुष्पाणि तथा पतिषु विहितकृत्रिमकोपाः प्रमदाः तथा प्रदीपवर्त्ति बहुकालपर्य्यन्तं शयितप्रतिबोधितस्मर इव प्रतिबोधितः।" अत्र स वर्णनस्य प्रस्तुतत्वात् प्रस्तुतानामनुलेपनादीनां एकबोधनक्रिया सम्बन्धेन तुल्ययोगिताऽलंकारोऽस्तीति।

हिन्दी—जहाँ प्रस्तुत अथवा अप्रस्तुत पदार्थों का जब गुण अ क्रिया सम्बन्धी एक धर्म से अभिसम्बन्ध हो तो वहाँ तुल्ययो अलंकार होता है।

उदाहरणार्थ—"अनुलेपनानि-" इत्यादि। अर्थात् "उस स काल ने कुंकुम चन्दनादि अनुलेपन, फूल और पति में कोप करने महिलायें और दीपों की बत्तियों को बहुत काल तक जैसे कामदेव सोकर पीछे प्रवुद्ध हो उस तरह प्रतिबोधित किया।"

उपर्युक्त पद्य में सायंकाल का वर्णन प्रस्तुत होने से अनु आदि का बोधनक्रिया रूप एकधर्म से अभिसम्बन्ध होने से तु योगिता अलंकार है।

तुल्ययोगिता (चन्द्रालोकः)

"क्रियादिभिरनेकस्य तुल्यता तुल्ययोगिता।"

अर्थात् क्रियया गुणेन चानेकस्य=प्रस्तुतस्य अप्रस्तुतस्य वा तुल्यत्वं=एकधर्माभिसम्बन्धः सा तुल्ययोगितेत्यर्थः। उदाहरणं यथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सङ्कुचन्ति सरोजानि स्वैरिणी वदनानि च।
प्राचीनाचलचूडाग्रचुम्बिबिम्बे सुधाकरे॥"

अयम्भावः—उदयाचलमस्तकस्पृक्चन्द्रबिम्बे सुधाकरे सरोजानि रिणीनां = व्यभिचारिणीनां मुखानि च सङ्कुचन्ति = मुकुलितानि न्तीति। तथाहि चन्द्रोदये कमलानां गमनभीरूणां स्वैरिणीनां वदना- ञ्च सङ्कोचमञ्चनशालित्वं सुप्रसिद्धमेव। अत्र वर्णनीये चन्द्रोदये तुतानां सरोजानां प्रकाशभीरुस्वैरिणीवदनानाञ्च सङ्कोचरूपैकक्रिया- वन्धेन तुल्यताप्रतिपादनात् तुल्ययोगिताऽलंकार इति।

हिन्दी—जहाँ अनेक प्रस्तुत अथवा अप्रस्तुत पदार्थों की एक क्रिया थवा गुण के साथ समानता दिखलाई जाय वहाँ तुल्ययोगिता अलंकार ता है।

उदाहरणार्थ—"सङ्कुचन्ति सरोजानि—" इत्यादि। भावार्थ यह कि "चन्द्रमा के उदयाचल-शिखर के अग्रभाग को स्पर्श करते ही र्थात् चन्द्रोदय होते ही कमल और व्यभिचारिणी स्त्रियों के मुख कुचित हो गये।" चन्द्रोदय होने पर कमल संकुचित हो जाते हैं और न्द्रमा के प्रकाश के कारण व्यभिचारिणी स्त्रियों का आना-जाना क जाने के कारण उनका भी मुख संकुचित हो जाता है। यहाँ न्द्रोदय वर्णन-प्रसङ्ग में कमलसंकोच तथा व्यभिचारिणी स्त्रियों की ख-मलिनता इन दोनों की वर्णनीय प्रस्तुत पदार्थों के संकोचनरूप र्य का एक ही क्रिया में अन्वय कर समानता दिखाई गयी है; अतएव हाँ तुल्ययोगिता अलंकार है।

(१२) दृष्टान्तः (साहित्यदर्पणः)

"दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्।"

अयम्भावः—सधर्मस्य = सामान्यगुणक्रियासहितस्य वस्तुनः = क्यार्थस्य प्रतिबिम्बनं—बिम्बप्रतिबिम्बभावेन स्थापनं तु दृष्टान्तालंकारो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भवतीति। वस्तुतो भिन्नयोरप्युपमानोपमेयधर्मयोः परस्परसादृ
भिन्नयोः पृथगुपादानं बिम्बप्रतिबिम्बभाव इति। अयं साधर्म्यवैधर्म्या
द्विविधो भवति।

उदाहरणं यथा—

"अविदितगुणापि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।
अनधिगतपरिमलापि हि हरति दृशं मालतीमाला।

अयम्भावः—सत्कविभणितिः अविदितगुणा अपि कर्णेषु मधु
वमति। तथाहि—मालतीमाला अनधिगतपरिमलाऽपि दृशं हरती
अत्र कर्णाऽधिकरणकमधुधारावमनं नयनकर्मकहरणं चोभौ धर्मौ
प्रीतिजनकत्वेन द्वयोर्वाक्ययोः साम्यं बोधयत; अतो दृष्टान्तालंकार

हिन्दी—साधारण गुण और क्रिया से युक्त वाक्यार्थ का
बिम्बप्रतिबिम्बभाव से स्थापन होता है उसे दृष्टान्त अलंकार कहते
यह साधर्म्य-वैधर्म्य के भेद से दो प्रकार का होता है। उदाहरण
"अविदितगुणापि—" इत्यादि। आशय यह है कि "गुण के विदि
होने पर भी उत्तम कवि की उक्ति सुनने वालों के कानों में मधु
बरसाती है। सुगन्ध की प्राप्ति न करने पर भी चमेली की माला
को आकृष्ट करती है।" यहाँ कानों में मधुधारा बरसना और नेत्र
आकर्षण ये दो भिन्न धर्म प्रीतिजनक होने से दो वाक्यों में सादृश्य
बोध कराते हैं। अतएव यहाँ साधर्म्य में दृष्टान्त अलंकार है।

दृष्टान्तः (चन्द्रालोकः)

"चेद्बिम्बप्रतिबिम्बत्वं दृष्टान्तस्तदलंकृतिः।
स्यान्मल्लप्रतिमल्लत्वे संग्रामोद्दामहुंकृतिः॥"

यदि वाक्यार्थयोः बिम्बप्रतिबिम्बत्वं तदा दृष्टान्तनामा अलङ्कार
अर्थात् यत्रोपमानोपमेयवाक्ययोर्भिन्नावेव धर्मौ बिम्बप्रतिबिम्बभाव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निर्दिष्टो तत्र दृष्टान्तालंकार इति। अत्र पूर्ववाक्यार्थोत्तरवाक्यार्थयोर्बिम्ब-प्रतिबिम्बभावादुदाहरणमप्येतदेव पद्यम्। मल्लप्रतिमल्लत्वे यथा संग्रामो-द्दामहुंकृतिः स्यात्तथा बिम्बप्रतिबिम्बत्वे दृष्टान्तालंकृतिः स्यादिति। दृष्टान्तसहितस्य (बिम्बप्रतिबिम्बत्वस्य हुंकृतिसहितस्य मल्लप्रतिमल्लत्वस्य बिम्बप्रतिबिम्बभावादत्र दृष्टान्तालंकारः।

हिन्दी—जहाँ वाक्यों का बिम्बप्रतिबिम्बभाव हो वहाँ दृष्टान्तालंकार होता है। जैसे प्रतिस्पर्धी दो योद्धाओं के होने पर ही समरभूमि में घोर हुंकार होने लगता है उसी प्रकार बिम्बप्रतिबिम्बभाव होने पर ही दृष्टान्तालंकार होता है। यहाँ मल्ल-प्रतिमल्लत्व, बिम्बप्रतिबिम्बत्व और दृष्टान्त हुंकृति का परस्पर बिम्बप्रतिबिम्बभाव होने से दृष्टान्तालंकार है।

(१३) व्यतिरेकः (साहित्यदर्पणः)

"आधिक्यमुपमेयस्योपमानान्न्यूनताऽथवा।
व्यतिरेकः—"।

अर्थाद्यत्र उपमानादुपमेयस्याधिक्यं न्यूनता वा वर्ण्यते तत्र व्यतिरेकनामालंकारो भवतीति। अधिकगुणकमुपमानमिति नियमः। यत्रास्य नियमस्य व्याकोपो भवति, उपमानापेक्षयोपमेयस्यैवाधिक्यं दोषन्यूनता वा यत्र वर्ण्यते तत्र नियमस्य व्यतिरेकाद् व्यतिरेक एवालंकारो भवतीति।

उदाहरणं यथा—

"गतं तिरश्चीनमनूरुसारथेः प्रसिद्धमूर्ध्वज्वलनं हविर्भुजः।
पतत्यधो धाम विसारि सर्वतः किमेतदित्याकुलमीक्षितं जनैः" ॥

अत्र नारदः उपमेयः सूर्यादयः उपमानम्। सूर्याग्न्यपेक्षयोपमेयस्य नारदस्यैवाधिक्यवर्णनादत्र व्यतिरेकालंकारः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दी—जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय का आधिक्य अथ
न्यूनत्व प्रदर्शित किया जाता है वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है। य
नियम है कि अधिक गुणवाला उपमान होता है। इस नियम का ज
व्याकोप होता है वहाँ नियम के व्यतिरेक के कारण व्यतिरेक अलंक
होता है।

उदाहरणार्थं—"गतं तिरश्चीनम्—" इत्यादि। इस पद्य में नार
उपमेय हैं तथा सूर्य और अग्नि उपमान हैं। यहाँ सूर्य तथा अग्नि
अपेक्षा उपमेय नारद के ही अधिक गुण का वर्णन होने के कारण व्यति
रेक अलंकार है।

व्यतिरेकः (चन्द्रालोकः)

"व्यतिरेको विशेषश्चेदुपमानोपमेययोः।
शैला इवोन्नताः सन्तः किं तु प्रकृतिकोमलाः॥"

यदि उपमानोपमेययोः विशेषः = वैलक्षण्यं तदा व्यतिरेकालंकार
उपमानादुपमेयस्य आधिक्ये न्यूनतायां वा विवक्षितायां व्यतिरेकालंका
भवतीत्यर्थः।

उदाहरणं यथा—सन्तः = साधवः शैलाः = पर्वताः इव उन्नत
किन्तु प्रकृतिकोमलाः भवन्तीति। अत्रौन्नत्येन शैलसज्जनयोः साम्ये
कोमलत्वेनोपमेयभूतानां सज्जनानामाधिक्यप्रतिपादनात् व्यतिरे
लङ्कारः।

हिन्दी—जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय में अधिकता अथ
न्यूनता प्रदर्शित की जाय वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है। उदाह
णार्थ—"सत्पुरुष पर्वत की तरह ऊँचे होते हैं। किन्तु पत्थर की त
कठोर स्वभाव वाले न होकर कोमल स्वभाव वाले हुआ करते हैं।" य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपमान रूप पर्वत से सज्जनरूप उपमेय की कोमलता का आधिक्य दर्शाया गया है; अतएव यहाँ व्यतिरेक अलंकार है।

(१४) श्लेषः (साहित्यदर्पणः)

"श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते।"

अयम्भावः—अभिन्नस्वरेणाभिन्नप्रयत्नतया चोच्चारितैः अभेदवत्प्रतीतैरत एव जतुकाष्ठन्यायेन परस्परं श्लिष्टैः पदैः अनेकार्थानामभिधाने अभिधया प्रतिपादने न तु व्यञ्जनया श्लेषालङ्कारो भवतीति। तथाहि—"सकृदुच्चरितः शब्द सकृदेवार्थमवगमयति इति सिद्धान्तः। अर्थभेदेन शब्दभेद इति वा उभाभ्यामपि सिद्धान्ताभ्यामनेकार्थप्रतिपादकेषु शब्देषु शब्दभेदः कल्प्यते—अत्रानेके शब्दाः सन्तीत्यनेकार्थप्रतीतिः यद्वा अनेकेऽर्थाः प्रतीयन्त इत्यनेके शब्दाः सन्तीति। किन्तु ते च भिन्नाः शब्दाः भिन्न-भिन्नतया न प्रतीयन्त एकप्रयत्नेनैकस्वरेण चोच्चारितत्वात्। अतएव जतुकाष्ठन्यायेन श्लिष्टा इत्युच्यन्ते। अर्थाद्यथा जतुना संश्लिष्टं काष्ठद्वयमप्येकमेव प्रतीयन्ते तद्वत् परस्परं संश्लिष्टाः शब्दा एक इव भासन्ते किन्त्वनेकार्थान् प्रतिपादयन्ति तत्र श्लेषालंकारो भवतीति।

स च श्लेषः शब्दश्लेषार्थश्लेषभेदेन द्विप्रकारको भवति। यत्र जतुकाष्ठन्यायेन शब्दानां श्लेषस्तत्र तु शब्दश्लेषः, यत्र तु एकवृन्तगतफलद्वयन्यायेनार्थानां श्लेषस्तत्रार्थश्लेषो भवति।

शब्दश्लेषोदाहरणं यथा—

"प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि॥"

अत्र "विधौ" इति विधि-विधुशब्दयोः सप्तम्यैकवचने रूपम्। अत्र "विधौ" धकारोत्तरवर्त्यौकाररूपेण इकारोकारयोः वर्णयोः श्लेषः इति वर्णश्लेष इत्यपि कथ्यते। वस्तुतोऽर्थभेदेन भिन्नयोः विधिविधुशब्दयोरत्र जतुकाष्ठन्यायेन श्लेषः इति शब्दश्लेषोदाहरणमिदम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थश्लेषोदाहरणं यथा—

"स्तोकेनोन्नतिमायाति स्तोकेनायात्यधोगतिम्।
अहो! सुसदृशो वृत्तिस्तुलाकोटेः खलस्य च॥"।

अर्थात्—तुलाकोटेः खलस्य च समानात्मिकैव स्थितिरस्ति 'य तुलाकोटिः स्तोकेनोन्नतिमायाति, स्तोकेन चाधोगच्छति तथैव खलो स्तोकेनाभ्युदयं मनुते स्तोकेन चापकर्षमिति 'उन्नत्यधोगत्योः द्वयो शब्दयोः एकवृन्तगतफलद्वयन्यायेन प्रत्येकस्माद् द्वयोरर्थयोः प्रतीतिरि अर्थश्लेषोदाहरणमिदम्।

हिन्दी—अभिन्न स्वर तथा अभिन्न प्रयत्न से उच्चरित होने कारण एकरूप में प्रतीत होने वाले अतएव जतुकाष्ठन्याय से परस्पर संश्लिष्ट माने जाने वाले पदों के द्वारा अनेक अर्थों का अभिधा शक्ति द्वारा प्रतिपादन होने पर श्लेष अलंकार होता है। आशय यह है कि "एक बार उच्चरित शब्द एक अर्थ का ही प्रतिपादन कर सकता है।" "अर्थभेद से शब्दभेद होता है।" इन दोनों ही सिद्धान्तों के अनुसार अनेक अर्थों के प्रतिपादक शब्दों में शब्दभेद स्वतःसिद्ध है। "यहाँ अनेक शब्दों के होने से अनेक अर्थों की प्रतीति हो रही है" अथवा "अनेक अर्थों के प्रतीत होने से अनेक शब्द भी होंगे"—ऐसा मानना पड़ेगा। वे अनेक शब्द भिन्न होते हुए भी भिन्न-भिन्न रूप में प्रतीत नहीं होते क्योंकि उनका उच्चारण एक स्वर से, एक प्रयत्न से होता है। अतएव ये जतुकाष्ठन्यायेन श्लिष्ट हैं ऐसा कहा जाता है। अर्थात् जिस प्रकार लाह के द्वारा दो काष्ठों को मिला दिये जाने पर एक की ही प्रतीति होती है उसी प्रकार परस्पर संश्लिष्ट शब्द भी एक ही प्रतीत होते हुए भी अनेक-अनेक अर्थों के प्रतिपादक होते हैं—वहाँ श्लेष अलंकार होता है।

यह श्लेष शब्दश्लेष एवं अर्थश्लेष के भेद से दो प्रकार का होता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। जहाँ 'जतुकाष्ठन्याय' से शब्दों का परस्पर श्लेष रहता है वहाँ शब्दश्लेष और जहाँ 'एकवृन्तगतफलद्वय' न्याय से श्लेष रहता है वहाँ अर्थश्लेष होता है।

शब्दश्लेष का उदाहरण जैसे—'प्रतिकूलतामुपगते'—इत्यादि। उपर्युक्त पद्य में 'विधि' तथा 'विधु' शब्दों के सप्तमी एकवचन का रूप "विधौ" है। यहाँ धकारोत्तरवर्ती औ के रूप में इकार तथा उकार का श्लेष है। इसे ही वर्णश्लेष भी कहा जाता है। वस्तुतः अर्थभेद से भिन्न माने जानेवाले विधि तथा विधु शब्दों का जतुकाष्ठन्यायेन श्लेष है अतएव यहाँ शब्दश्लेष अलंकार है। अर्थश्लेष का उदाहरण जैसे—"स्तोकेनोन्नतिमायाति—" इत्यादि। यहाँ 'उन्नति' तथा 'अधोगति' इन दोनों शब्दों से 'एकवृन्तगतफलद्वय' न्याय से दो-दो अर्थों की प्रतीति होनी है। अतः यहाँ अर्थश्लेष अलंकार है।

श्लेषः (चन्द्रालोकः)

चन्द्रालोके तु श्लेषस्य त्रिविधरूपं वर्णितम्, तथाहि—खण्डश्लेषः, भङ्गश्लेषः, अर्थश्लेषश्चेति। तत्र खण्डश्लेषस्य लक्षणोदाहरणं यथा—

"खण्डश्लेषः पदानां चेदेकैकं पृथगर्थता।
उच्छलद्भूरिकीलालः शुशुभे वाहिनीपतिः॥"

अर्थात् समस्तपदखण्डभूतानां शब्दानां एकैकं पृथगर्थता स्यात्तदा खण्डश्लेषालङ्कारो भवतीति। वाक्यप्रयुक्तानां पदानामेकैकस्य पदस्य पृथगर्थता नानार्थप्रतिपादकता भवेच्चेत्तदा खण्डश्लेष इति भावः। यथा—"उच्छलद्भूरिकीलालः—" इत्यादिपद्ये उच्छलद्भूरिकीलाल इति समस्तपदावयवभूतस्य कीलालरूपपदखण्डस्य जलरुधिररूपोभयार्थकतया एवं वाहिनीपतिरिति समस्तपदावयवभूतस्य वाहिनीरूपपदखण्डस्य सेनानदीरूपोभयार्थकतया च पदानां भिन्नार्थकत्वात्खण्डश्लेषः।

भङ्गश्लेषस्य लक्षणोदाहरणं यथा—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"भङ्गश्लेषः पदस्तोमस्यैव चेत्पृथगर्थता ।
अजरामरता कस्य नायोध्येव पुरी प्रिया ॥"

यदि पदस्तोमस्य=पदसमूहस्यैव पृथगर्थता = भिन्नार्थकता स्यात्तदा भङ्गश्लेष इत्यन्वयार्थः । संक्षेपार्थस्तु पदसमूहस्यैव यत्र पृथगर्थता भवति तत्र भङ्गश्लेषालंकारो भवतीति । उदाहरणं यथा—"अजरामरता—" इत्यादि । अत्राजरश्चामरश्चेति अजरामरौ तयोर्भावोऽजरामरतेति तल्प्रत्ययस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धात् 'अजरता, अमरता' इत्यर्थस्य प्रतीतिः, पुनश्च अयोध्यापक्षे अजश्च रामश्चेति अजरामौ तौ रतौ कृतनिवासौ यस्यां सेति व्युत्पत्त्या अजरामरूपार्थयोरपि प्रतीतिर्भवति । अत्र अजरामरतेति पदस्तोमस्यैवार्थद्वयमिति लक्षणसमन्वयात् भङ्गश्लेषालंकारः ।

अर्थश्लेषस्य लक्षणोदाहरणं यथा—

"अर्थश्लेषोऽर्थमात्रस्य यद्यनेकार्थसंश्रयः ।
कुटिलाः श्यामला दीर्घाः कटाक्षाः कुन्तलाश्च ते ॥"

अर्थमात्रस्य = वाच्यार्थमात्रस्य यदि अनेकार्थसंश्रयः=अनेकपदार्थानामन्वयः स्यात्तदाऽर्थश्लेषालङ्कारो भवति । यथा "कुटिलाः श्यामला-" इत्यादि । अत्र कटाक्षानां कुटिलत्वाद्यन्यत्, कुन्तलानाञ्च कुटिलत्वाद्यन्यदित्यनेकविधस्य कुटिलतारूपस्यार्थस्य कटाक्षकुन्तलरूपानेकपदार्थान्वयितयाऽर्थश्लेषालंकारः ।

हिन्दी—खण्डश्लेष, भङ्गश्लेष और अर्थश्लेष के भेद से श्लेष का तीन रूप चन्द्रालोक में वर्णित हैं। समस्त पद के किसी एक खण्ड का जहाँ अनेक अर्थ किया जाय वहाँ खण्डश्लेष अलंकार होता है । अर्थात् वाक्य में प्रयुक्त होने वाले पदों में एक-एक की जहाँ पृथक् अर्थतः अनेकार्थ प्रतिपादकता होती है वहाँ खण्डश्लेष अलंकार होता है । जैसे— "उच्छलद्भूरिकीलाल—" इत्यादि । उपर्युक्त पद के "कीलाल" रूप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक खण्ड से रुधिर और जल इन दो अर्थों की और "वाहिनीपती" पद के वाहिनीरूप एक खण्ड से सेना तथा नदीरूप अर्थों की उपस्थिति होकर उछलते हुए जलकल्लोल से समुद्र शोभित है—इस अर्थ की प्रतीति भी होती है अतएव यह खण्डश्लेष है।

यदि पदसमूह अर्थात् समस्त पद ही पृथग् पृथगर्थवाची हो तो उसे भङ्गश्लेष कहते हैं। अर्थात् पदसमूह की ही जहाँ पृथगर्थता होती है वहाँ भङ्गश्लेष अलंकार होता है, जैसे—"अजरामरता—" इत्यादि। यहाँ अजर तथा अमर में द्वन्द्वसमास है और भाव अर्थ में तल् प्रत्यय है। तल् प्रत्यय का दोनों के साथ सम्बन्ध होने से अजरता, अमरता दोनों अर्थों की प्रतीति होती है। पुनः अयोध्या-पक्ष में अज तथा राम यह द्वन्द्व समास है। अज और राम दोनों निवास किये थे—ऐसी व्युत्पत्ति करने पर अज तथा राम रूप अर्थ की भी प्रतीति होती है। "अजरामरता" इस पदसमूह से ही दो अर्थों की प्रतीति होती है। अतः यहाँ भङ्गश्लेष अलंकार है।

जहाँ केवल वाच्यार्थ का अनेक पदार्थों के साथ अन्वय किया जाए वहाँ अर्थश्लेष अलंकार होता है। जैसे—"कुटिलाः श्यामला—" इत्यादि। यहाँ कुटिलतारूप अर्थ, कटाक्ष और केशरूप पदार्थों के साथ सम्बन्ध रखता है अतएव यहाँ अर्थश्लेष अलंकार है।

(१५) अर्थान्तरन्यासः (साहित्यदर्पणः)

लक्षणम्—"सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि।

कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते।
साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्यासोऽष्टधा ततः॥"

यत्र साधर्म्यप्रकारकज्ञानेन वैधर्म्यज्ञानेन वा विशेषेण सामान्यस्य, सामान्येन विशेषस्य, कारणेन कार्यस्य कारणस्य च समर्थनं क्रियते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत्रार्थान्तरन्यासनामालङ्कारो भवतीति। एवम्प्रकारेण चतुर्विधोऽर्थान्तन्यासः साधर्म्यवैधर्म्येणाष्टप्रकारको भवति। तत्र साधर्म्येण विशेषेण सामान्यसमर्थनरूपार्थान्तरन्यासस्योदाहरणं यथा—

"बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति।
सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा॥

भगवन्तं श्रीकृष्णं प्रति उद्धवस्योक्तिरियम्। अस्यार्थस्तु यथा महानद्या सम्भूय नगापगा अम्भोधिमभ्येति तथैव बृहत्सहायः क्षोदीयानपि कार्यान्तं गच्छति। अत्र नगापगादिविशेषरूपेण प्रथमार्द्धगतः सामान्यार्थः युक्तियुक्तः क्रियते अतोऽयं साधर्म्येण विशेषेण सामान्यसमर्थनरूपार्थान्तरन्यासस्योदाहरणम्।

साधर्म्येण सामान्येन विशेषसमर्थनेऽर्थान्तरन्यासस्योदाहरणं यथा—

"यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधवः।
विरराम, महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः॥"

एवमर्थपदां वाचमादाय माधवो विरराम, यतो हि महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणो भवन्तीति वाक्ये "यावदर्थपदां वाचमेवमादाय विरराम" इति विशेषः "महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः" इति सामान्यम्। एवञ्च सामान्यवाक्येन पूर्वस्थविशेषवाक्यस्य साधर्म्येण समर्थनं क्रियते, अतोऽत्र साधर्म्येण सामान्येन विशेषसमर्थनेऽर्थान्तरन्यासोऽलंकार इति।

साधर्म्येण कारणेन कार्यसमर्थनेऽर्थान्तरन्यासस्योदाहरणं यथा—

"पृथ्वि! स्थिरा भव भुजङ्गम! धारयैनां,
त्वं कूर्मराज! तदिदं द्वितयं दधीथाः।
दिक्कुञ्जराः! कुरुत तत्त्रितये दिधीर्षां,
देवः करोति हरकार्मुकमाततज्यम्॥"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अत्र कारणभूतं हरकार्मुकाततज्यीकरणं पृथिवीस्थैर्यादेः कार्यस्य मर्थकम्, अतः साधर्म्येण कारणेन कार्यसमर्थनेऽर्थान्तरन्यासस्योदा-रणमिदम्।

साधर्म्येण कार्येण कारणसमर्थनेऽर्थान्तरन्यासमुदाहरणं यथा—

"सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृष्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥"

अत्र सम्पद्वरणं कार्यं सहसा विधानभावस्य विमृष्यकारित्वरूपस्य ारणस्य समर्थनम्। अत्रोऽत्र साधर्म्येण कार्येण कारणसमर्थन-पार्थान्तरन्यासोऽलंकारोऽस्तीति।

हिन्दी—जहाँ विशेष के द्वारा सामान्य का, सामान्य के द्वारा विशेष ा, कारण के द्वारा कार्य का और कार्य के द्वारा कारण का समर्थन किया ाय वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। यह चारों प्रकार का र्थान्तरन्यास साधर्म्य और वैधर्म्य के भेद से आठ प्रकार का होता है।

साधर्म्येण विशेष के द्वारा सामान्य समर्थनरूप उदाहरण—"बृह-हायः—" इत्यादि। अर्थात्—"जैसे महानदियों के साथ मिलकर छोटी दियाँ भी समुद्र को प्राप्त करती हैं उसी प्रकार बड़े लोगों की सहायता छोटे लोग भी कार्य की सिद्धि कर लेते हैं।" यहाँ पर विशेषरूप तरार्द्ध के द्वारा सामान्यरूप पूर्वार्द्ध का समर्थन होने से विशेष से मान्य समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

साधर्म्येण कारण के द्वारा कार्यसमर्थनरूप अर्थान्तरन्यास जैसे—ावदर्थपदाम्"—इत्यादि। अर्थों के अनुसार शब्दों से युक्त ऐसी णी कहकर श्रीकृष्ण चुप हो गये क्योंकि महान् लोग स्वभावतः मित-षी होते है। यहाँ अर्थों के अनुसार शब्दयुक्त वाणी कहकर "श्रीकृष्ण ् हो गये" यह विशेषवाक्य है तथा "महान् लोग स्वभावतः मितभाषी े है।" यह सामान्य वाक्य है। इस प्रकार सामान्य के द्वारा विशेष

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का समर्थन होने से यहाँ साधर्म्येण सामान्येन विशेषसमर्थन अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

साधर्म्येण कारण के द्वारा कार्यसमर्थनरूप अर्थान्तरन्यास जैसे "पृथ्वि ! स्थिरा भव–" इत्यादि। अर्थात् "हे पृथिवि। तुम स्थिर र हे शेषनाग ! तुम पृथिवी को संभालो। हे कच्छपराज ! तुम दोनो संभाले रहना। हे दिग्गजों ! इन तीनों को सम्भालने की इच्छा क्योंकि श्रीराम शिवधनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ा रहे हैं।" यहाँ कारण शिवधनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाना पृथिवी आदि के स्थिरता आदि का समर्थक है। अतएव यहाँ साधर्म्येण कारण के द्वारा कार्य समर्थनरूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

साधर्म्येण कार्य के द्वारा कारणसमर्थनरूप अर्थान्तरन्यास जै "सहसा विदधीत न क्रियाम्–" इत्यादि। यहाँ पर सम्पत्ति का वरण कार्य, सहसा न करना, अर्थात् विचारपूवक कार्य के द्वारा अनुष्ठ रूप कारण का समर्थक होने से साधर्म्येण कार्य के द्वारा कारण समर्थनरूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

अर्थान्तरन्यासः (चन्द्रालोकः)

"भवेदर्थान्तरन्यासोऽनुषक्तार्थान्तराभिधा।
हनूमानब्धिमतरद्दुष्करं किं महात्मनाम् ॥"

अर्थाद्यत्र प्रतिपाद्यमानेन मुख्यार्थेन सह सम्बद्धस्य कस्यचित् न्तरस्य अभिधानं भवति यद्वा अनुषक्तमर्थान्तरमेव यत्र मुख्या साधकं भवति तत्र अर्थान्तरन्यासोऽलंकारो भवतीति।

उदाहरणं यथा—"हनूमानब्धि–" इत्यादि। अत्र "हनूमानब्धि रत्" इति मुख्यत्वे प्रतिपाद्यमानोऽर्थो—"महात्मनां कृते किं दुष्क

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इति तेनानुषक्तमर्थान्तरम् । अत्र "महात्मनां सर्वं सुकरम्" इति सामान्यार्थस्य अब्धितरणरूपविशेषेणोपपादनादर्थान्तरन्यासालङ्कारः ।

हिन्दी— जहाँ प्रतिपाद्यमान मुख्य अर्थ के साथ सम्बद्ध रहने वाले किसी दूसरे अर्थ का अभिधान किया जाता है अथवा अनुषक्त अर्थान्तर ही जहाँ मुख्यार्थ का साधक होता है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। उदाहरणार्थ–"हनूमानब्धिमतरत्" इत्यादि ।

"हनूमान् ने समुद्र को पार किया, महात्माओं के लिए कौन सा कार्य दुष्कर होता है।" यहाँ "हनूमान् ने समुद्र को पार किया" यह मुख्यतः प्रतिपाद्यमान अर्थ है और "महात्माओं के लिए क्या दुष्कर है।" यह सम्बद्ध अर्थान्तर है। यहाँ समुद्रोल्लंघन-रूप विशेष अर्थ का समर्थन "महात्माओं के लिए दुष्कर कार्य कौन सा है।"—इस सामान्य अर्थान्तर द्वारा किया गया है। अतएव यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

(१६) पर्यायोक्तम् (साहित्यदर्पणः)

लक्षणम्—"पर्यायोक्तं यदा भङ्ग्या गम्यमेवाभिधीयते।"

अर्थात् यत्र गम्यं – प्रतीयमानं वस्तु एव भङ्ग्या प्रकारान्तरेणाभिधीयते, तत्र पर्यायोक्तनामालंकारो भवति। उदाहरणं यथा—

"अनेन पर्यासयताऽश्रुबिन्दून् मुक्ताफलस्थूलतमान् स्तनेषु।
प्रत्यर्पिताः शत्रुविलासिनीनामाक्षेपसूत्रेण विनैव हाराः॥'

विदर्भराजकुमार्या इन्दुमत्याः स्वयम्बरे प्रतिहाररक्ष्याः सुनन्दाया इन्दुमतीं प्रत्यङ्गनाथस्य प्रशंसोक्तिरियम्। अर्थस्तु—"अनेन अङ्गदेशाधीश्वरेण शत्रुविलासिनीनां स्तनेषु मुक्ताफलस्थूलतमान् अश्रुबिन्दून् पर्यासयता आक्षेपसूत्रेण विनैव हाराः प्रत्यर्पिताः।"

अत्र राज्ञः अङ्गनाथस्य व्यञ्जनया बोध्यरूपं यत् शत्रुमारणरूप-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कारणं तद्वत् कार्यभूतं तथाविधशत्रुस्त्रीक्रन्दनजलमपि प्रभावातिशय-बोधकत्वेन वर्णनार्हमिति पर्यायोक्तनामालंकार एव ।

हिन्दी—जहाँ दूसरे ही ढंग से व्यङ्ग्य वस्तु का अभिधा वृत्ति से प्रतिपादन किया जाता है वहाँ पर्यायोक्त अलंकार होता है । उदाहरण जैसे;—

"अङ्गदेशाधिपति ने शत्रु-स्त्रियों के स्तनों में मोतियों के समान बड़े-बड़े अश्रुबिन्दुओं को फैलाकर गूंथनेवाले सूत्र के विना ही हारों का अर्पण कर दिया है ।"

यहाँ वर्णनीय अङ्गदेशाधिपति का व्यञ्जना से बोध्य शत्रुमारणरूप कारण के समान उसके कार्यस्वरूप शत्रु-स्त्रियों के आँसू भी प्रभावा-तिशय के बोधक होने से वर्णन करने योग्य हैं, अतः यहाँ पर्यायोक्त अलंकार है ।

पर्यायोक्तिम् (चन्द्रालोकः)

"कार्याद्यैः प्रस्तुतैरुक्ते पर्यायोक्ति प्रचक्षते ।
तृणान्यङ्कुरयामास विपक्षनृपसद्मसु ॥"

अर्थाद्यत्र उक्तैः प्रस्तुतैः कार्याद्यैः प्रस्तुतानामेव कारणादिप्रतीतिर्भ-वति तत्र पर्यायोक्तिरलंकारो भवतीति । पर्यायोक्तेरर्थस्तु—भङ्ग्यन्तर-प्रकारविशेषेण प्रस्तुतस्यैव कथनमिति । उदाहरणं यथा—

"अयं राजा विपक्षनृपाणां शत्रुराज्ञां सद्मसु राजभवनेषु तृणानि रङ्के अङ्कुरयामास ।" अत्र "शत्रवः राज्ञा जिता" इति व्यङ्ग्योऽर्थः; स एव यं विपक्षनृपसद्मसु तृणाङ्कुरोत्पत्तिरूपकार्यस्य कारणम् । एवञ्चात्र तृणा-ङ्कुरोत्पत्तिरूपकार्यद्वारा राजकृतशत्रुपराजयरूपकारणस्य प्रतीतिर्भवति; अतोऽत्र पर्यायोक्तिरलङ्कारः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दी—जहाँ उक्त प्रस्तुत कार्यादि के द्वारा प्रस्तुत में ही कारणादि प्रतीति होती है वहाँ पर्यायोक्ति अलंकार होता है। पर्यायोक्ति का अर्थ है—भङ्ग्यन्तर प्रकार विशेष के द्वारा प्रस्तुत का ही कथन।

"इस राजा ने शत्रुराजाओं के गृहों में तृणों को अङ्कुरित कर या था"। यहाँ "राजा के द्वारा शत्रु जीत लिये गये"—यह व्यङ्ग्यार्थ विपक्षी राजाओं के घरों में तृणाङ्कुरोत्पत्ति-रूप कार्य का कारण इस प्रकार यहां तृणाङ्कुरोत्पत्तिरूप कार्य के द्वारा राजकृतशत्रु-ाजय-रूप कारण की प्रतीति होने से पर्यायोक्ति अलंकार है।

(१७) विरोधाभासः (साहित्यदर्पणः)

लक्षणम्—"(जातिश्चतुर्भिर्जात्याद्यैर्गुणो गुणादिभिस्त्रिभिः।
क्रिया क्रियाद्रव्याभ्यां यत् द्रव्यं द्रव्येण वा मिथः।)
विरुद्धमिव भासेत विरोधोऽसौ दशाकृतिः॥"

यत्र जातिः चतुर्भिः जात्याद्यैः विरुद्धमिव भासेत, गुणः त्रिसंख्यकैः क्रियाद्रव्यैः विरुद्धमिव भासेत, क्रिया क्रियाद्रव्याभ्यां विरुद्धमिव सेत, द्रव्यं द्रव्येण वा परस्परं विरुद्धमेव भासेत तत्र विरोधाभासालं-रो भवतीति। उदाहरणं यथा—

"तव विरहे मलयमरुद्दवानलः, शशिरुचोऽपि सोष्माणः।
हृदयमलिरुतमपि भिन्ते नलिनीदलमपि निदाघरविरस्याः॥"

नायकं प्रति नायिकादूत्या उक्तिरियम्। तथाहि 'हे महाशय। तव रहे अस्याः मलयमरुत् दवाऽनलः, शशिरुचः सोष्माणः, अलिरुतं यं भिन्ते। एवञ्च नलिनीदलमपि निदाघरविः।" अत्र मलयमरुत्व-ाऽनलत्वजात्योर्विरोधः, शशिरुक्त्वजातेः सोष्मत्वगुणेन विरोधः, लिरुतत्वजातेर्भेदनक्रियया विरोधः, नलिनीदलत्वजातेः निदाघरविना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्रव्येण विरोधः। एवम्प्रकारेण अत्र जातेः ज्ञात्यादिभिश्चतुर्भि
त्वात् विरोधः। अत्र पवनादीनां बहुव्यक्तिवाचकत्वाज्जातिश
दवानलोष्महृदयभेदनसूर्येर्जातिगुणक्रियाद्रव्यरूपैरन्योन्यं विरोधो आ
आभासते, विरहहेतुकत्वात्तस्य समाधानमपि भवति, अतोऽत्र वि
भासोऽलंकारो भवतीति।

हिन्दी—जहाँ जाति-जात्यादि अर्थात् जाति, गुण, क्रिया औ
के साथ, गुण-गुणादि अर्थात् गुण, क्रिया और द्रव्य के साथ,
क्रिया और द्रव्य के साथ और द्रव्य-द्रव्य के साथ परस्पर वि
तरह भासित हों वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है। उदाहरण
"तव विरहे-" इत्यादि।

नायक के प्रति नायिका के दूती की यह उक्ति है। दूती कहती
"तुम्हारे वियोग में उस नायिका के लिए मलयवायु दावाग्नि हो
चन्द्रमा की किरणें भी उष्ण हो रही हैं, भ्रमर-झङ्कार भी
का भेदन कर रहा है और कमल का पत्ता भी ग्रीष्म ऋतु के
समान हो रहा है।" यहाँ मलयं, मरुत् और दावानल जातिवाच
इन दोनों जातियों का विरोध सा दिखलाया गया है। विरह से
वायु भी दावानल के समान हो रहा है, चन्द्रकिरणें भी उष्ण
हो रहीं हैं, सुमधुर भ्रमर-झङ्कार भी असह्य हो रहा है और शीत
कोमल कमल का पत्ता भी ग्रीष्म ऋतु के सूर्य के समान प्रतीत हो
है। यहाँ चन्द्रकिरण ज्ञातिवाचक है उसका उष्णत्व गुण से विरो
भ्रमरझङ्कार जाति से भेदन क्रिया का विरोध है। नलिनीदल जा
निदाघ रवि द्रव्य का विरोध है। इस प्रकार यहाँ जाति का जाति
क्रिया और द्रव्य से विरोध है।

यहाँ पवन आदि शब्द बहुव्यक्तिवाचक होने से जातिवा
उनका दावानलत्व जाति से, ऊष्मत्व गुण से, हृदयभेदन क्रिया
सूर्य द्रव्य से आपाततः विरोध का आभास होता है और उसके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क होने से समाधान भी होता है। अतएव यहाँ विरोधाभास ंकार है।

विरोधाभासः (चन्द्रालोकः)

लक्षणम्—"श्लेषादिभूर्विरोधश्चेद्विरोधाभासता मता।
अप्यन्धकारिणानेन जगदेतत्प्रकाश्यते ॥"

अर्थाद्यत्र श्लेषादीनां कारणादनेकार्थेष्वेकमर्थमादाय विरोधः द्योत्यते त्र विरोधाभासोऽलङ्कारो भवतीति। यथा—"अनेन अन्धकारिणाऽपि तज्जगत् प्रकाश्यते।". अत्र अन्धकारोऽस्त्यस्मिन्निति अन्धकारी, तेन न्धकारिणा सान्धकारेणानेन वस्तुना एतज्जगत् प्रकाश्यते इति आदौ समानो विरोधः, अन्धकस्य अरिः=शत्रुः तेन अन्धकारिणा=शिवेन तज्जगत् प्रकाश्यते इति तात्पर्यविषयीभूतार्थेन परिह्रियते, अतोऽत्र रोधाभासोऽलंकारो भवतीति।

हिन्दी—जहाँ श्लेष आदि के कारण होने वाले अनेक अर्थों में से एक ो मानकर विरोध की प्रतीति-मात्र हो वहाँ विरोधाभास अलंकार ोता है। उदाहरणार्थ—"अप्यन्धकारिणा—"इत्यादि। अर्थात् अन्ध-ारी (अन्धकारवान् होते हुए भी) से भी सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित हो रहा है। यह विरोध आपाततः मालूम होता है, वस्तुतः अन्धक दैत्य के ात्रु भगवान् शिव से यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित हो रहा है—यह अर्थ त्पन्न होता है।

यहाँ "अन्धकारिणा" पद श्लिष्ट है; जिसके अन्धकार वाला तथा न्धक का शत्रु ये दो श्लिष्ट अर्थ हैं। इसमें प्रथम अर्थ का केवल आभास—ात्र होता है; लेकिन वास्तविक अर्थ दूसरा ही है। अतएव यहाँ विरो-धाभास अलंकार है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(१८) विभावना (साहित्यदर्पणः)

लक्षणम्—"विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते।
उक्तानुक्तनिमित्तत्वाद्द्विधा सा परिकीर्तिता॥"

यत्र हेतुं = कारणं विनैव कार्यस्योत्पत्तिर्जायते तत्र विभावना लङ्कारो भवतीति भावः। सा च विभावना उक्तनिमित्तत्वादनुक्तनि त्वाच्च द्विप्रकारिका भवतीति। उदाहरणं यथा—

अनायासकृशं मध्यमशङ्कतरले दृशौ।
अभूषणमनोहारि वपुर्वयसि सुभ्रुवः॥

कस्याश्चित्तरुण्या वर्णनमिदम्। तथाहि यौवने वयसि सुभ्रु सुन्दर्याः मध्यं अनायासं कृशम् = क्षीणम्। तथा दृशौ = नयने अ तरले = स्वभावचञ्चले तथा वपुः = देहः अभूषणमनोहारि = भू रहितमपि मनोहरणशीलमस्तीति भावः।

अत्र मध्यस्य कृशत्वं प्रति दृशोस्तरलत्वं प्रति शङ्का, तथा मनोहारित्वं प्रति भूषणं प्रसिद्धं कारणम्। तेषामभावेऽपि कृशत्वा कार्याणामुत्पत्तेर्विभावनाऽलङ्कारः। एवञ्चात्र "वयसि" इति वयस निबद्धयमानत्वात् वयोरूपं निमित्तमुक्तम्। तथा चेयमुक्तनि विभावना इति।

अस्मिन्नुदाहरणे एव "वपुर्भाति मृगीदृशः" इति पाठेऽनुक्तनि भवतीति।

हिन्दी—जहाँ कारण के विना ही कार्य की उत्पत्ति कही जाती है विभावना अलंकार होता है। वह विभावना उक्तनिमित्ता और अ निमित्ता के भेद से दो प्रकार की होती है। उदाहरणार्थ—"अना कृशम्"–इत्यादि। अर्थात् "सुन्दर भौहों वाली कामिनी का यौवना में कमर विना परिश्रम के ही कृश है, नेत्र विना शंका के ही च

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा शरीर विना अलङ्कारों के ही सुन्दर है।" यहाँ पर मध्यभाग के कृशत्व, नयनों के चञ्चलत्व और शरीर के मनोहारित्व—इन सबका निमित्त यौवन है। अतः यहाँ उक्तनिमित्ता विभावना अलंकार है।

उपर्युक्त उदाहरण में ही "वपुर्भाति मृगीदृशः" ऐसा पाठ रखने पर अनुक्तनिमित्ता विभावना अलङ्कार होगा।

विभावना (चन्द्रालोकः)

लक्षणम्—"विभावना विनापि स्यात्कारणं कार्यजन्म चेत् ।"

अयम्भावः—यदि कारणं विनाऽपि कार्यजन्म = कार्योत्पत्तिर्जायते तदा विभावनाऽलङ्कारो भवतीति।

उदाहरणम्—"पश्य लाक्षारसासिक्तं रक्तं त्वच्चरणद्वयम् ।"

अर्थात् हे सुन्दरि ! लाक्षारसासिक्तं त्वच्चरणद्वयं रक्तं = रक्तवर्णमिति पश्य = अवलोकय। अत्र रक्तत्वं प्रति लाक्षारसासिक्तत्वं कारणम्, तदभावेऽपि रक्तत्वं चरणयोरुपनिबध्यमानमापाततो विरुद्धमपि स्वाभाविकसौन्दर्यरूपहेतुतया पर्यवयस्यति। तस्मादत्र विभावनाऽलङ्कारो भवतीति।

हिन्दी—यदि कारण के विना भी जहाँ कार्यनिष्पत्ति वर्णित हो, वहाँ विभावना होती है। उदाहरणार्थ "पश्य लाक्षारसासिक्तम्"— इत्यादि। अर्थात्—"देखो ! लाक्षारस से रंगे विना ही तुम्हारे दोनों चरण लाल हैं। यहाँ पर चरणों की लाली में लाक्षारस का सेक कारण है किन्तु यहाँ लाक्षारस के सेक के विना ही चरणों की लाली वर्णित है। अतएव यहाँ पर कारण के विना ही कार्य की उत्पत्ति का वर्णन होने से विभावना अलंकार है।

(१९) विशेषोक्तिः (साहित्यदर्पणः)

लक्षणम्—"सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिस्तथा द्विधा ।"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात् हेतौ = प्रसिद्धकारणे सति – विद्यमाने यत्र फलस्य अभा कार्यस्यानुत्पत्तिर्भवति तत्र विशेषोक्तिनामालंकारो जायत इति। सा उक्तनिमित्ता, अनुक्तनिमित्तेति भेदेन द्विप्रकारिका भवतीति। उक्तनिमि विशेषोक्तेरुदाहरणं यथा—

"धनिनोऽपि निरुन्मादा युवानोऽपि न चञ्चलाः।
प्रभवोऽप्यप्रमत्तास्ते महामहिमशालिनः॥"

अर्थात् महामहिमशालिनो जनाः धनसम्पन्ना अपि अहङ्काररहि भवन्ति। युवानः – तरुणाः सन्तोऽपि तरलस्वभावाः न भवन्ति, ऐश्व सम्पन्ना अपि अप्रमत्ताः = अनवधानरहिता भवन्तीति। अस्मि उदाहरणे उन्मादं, चाञ्चल्यं प्रमादं च प्रतिक्रमतो धनं, यौवनं प्रभुत कारणम्। तथा च धनादिषु हेतुषु सत्स्वपि उन्मादादीनां कार्या मनुत्पत्तेर्विशेषोक्तिः। अत्र "महामहिमशालिनः" इति कथनात् "म महिमशालित्वं" निमित्तमुक्तम्। अत एवेयमुक्तनिमित्ता विशेषोक्तिः।

अस्मिन्नेव पद्ये चतुर्थपादे "कियन्तः सन्ति भूतले" इति अनुक्तनिमित्ता विशेषोक्तिर्भविष्यति।

हिन्दी—कारण के होते हुए भी फल (कार्य) के न होने विशेषोक्ति अलंकार होता है। यह कारण के उक्त और अनुक्त हो दो प्रकार का होता है। उक्तनिमित्ता विशेषोक्ति का उदाहरण जैसे "धनिनोऽपि"—इत्यादि। भावार्थ यह है कि "वे बड़े महत्त्व से शो होनेवाले पुरुष धनी होकर भी उन्माद से रहित हैं, जवान होकर चञ्चल नहीं हैं, ऐश्वर्यसम्पन्न होकर भी प्रमाद से रहित है।"

यहाँ उन्माद के प्रति धन, चञ्चलता के प्रति यौवन और प्रम के प्रति प्रभुता कारण है। इन धन, यौवन तथा प्रभुतारूप कारण रहते हुए भी उन्माद, चञ्चलता तथा प्रमत्ततारूप कार्यों का अभाव व होने से विशेषोक्ति अलंकार है। यहाँ "महामहिमशालित्व" श

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ड़े महत्व से शोभित होना निमित्त कहा गया है। इसलिए यह उक्त-निमित्ता विशेषोक्ति अलंकार है। यहीं पर चतुर्थ चरण में "कियन्तः न्ति भूतले" अर्थात् "ऐसे लोग भूतल में कितने हैं।" ऐसा पाठ रखें । अनुक्तनिमित्त-विशेषोक्ति कही जायेगी।

विशेषोक्ति (चन्द्रालोकः)

लक्षणम्—"विशेषोक्तिरनुत्पत्तिः कार्यस्य सति कारणे।"

अयम्भावः—यत्र सत्यपि कारणे कार्यस्योत्पत्तिर्जायते तत्र विशेषोक्तिरलङ्कारो भवतीति। उदाहरणं यथा—

"नमन्तमपि धीमन्तं न लङ्घयति कश्चन।"

अर्थात् नमन्तमपि = नतमस्तकवन्तमपि श्रीमन्तं=बुद्धिमन्तं जनं कश्चिदपि पुरुषो लङ्घयितुम् शक्तो न भवतीति। अत्र नमनरूपकारणे सत्यपि लङ्घनरूपकार्यस्याभावप्रतिपादनाद् विशेषोक्तिरलङ्कारोऽस्तीति।

हिन्दी–जहाँ कारण के विद्यमान होते हुए भी कार्य की उत्पत्ति न हो वहाँ विशेषोक्ति अलङ्कार होता है। उदाहणार्थ–"नमन्तमपि—" इत्यादि। अर्थ यह है कि "बुद्धिमान् पुरुष के विनयवश झुक जावे पर भी उन्हें कोई लांघ नहीं सकता।" यहां झुकना-रूप कारण के विद्यमान रहने पर भी उल्लङ्घन रूप कार्य का अभाव होने से विशेषोक्ति अलङ्कार है।

(२०) असङ्गतिः (साहित्यदर्पणः)

लक्षणम्—"कार्यकारणयोर्भिन्नदेशतायामसङ्गतिः।"

अयमाशयः—यत्र कार्यकारणयोर्भिन्नदेशवृत्तित्वं वर्ण्यते तत्रासङ्गतिर्नामकोऽलङ्कारो भवतीति। उदाहरणं यथा—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"सा बाला, वयमप्रगल्भमनसः, सा स्त्री, वयं कातराः,
सा पीनोन्नतिमत्पयोधरयुगं धत्ते सखेदा वयम् ।
साक्रान्ता जघनस्थलेन गुरुणा, गन्तुं न शक्ता वयम्,
दोषैरन्यजनाश्रयैरपटवो जाताः स्म इत्यद्भुतम् ॥",

काञ्चित्सुन्दरी दृष्ट्वा कस्यचित्कामुकस्य स्वमित्रं प्रत्यु रियम्। सा बाला परन्त्वहमप्रगल्भमनसः, सा स्त्री परन्तु कातराः, सा पीनोन्नतिमत्पयोधरयुगं धत्ते वयं सखेदाः। सा गुरु जघनस्थलेन आक्रान्ता परन्तु वयं गन्तुमपि असमर्थाः। भिन्न स्थितदूषणैर्वयमसमर्थाः जाता इति आश्चर्यम्।

अत्र हेतुभूतानां बालात्वं-स्त्रीत्व-पीनोन्नतिमत्पयोधरयुगध कत्वजघनस्थलाक्रान्तत्वादीनां सुन्दरीनिष्ठत्वात् तत्कार्यभूताना प्रगल्भमनस्त्व-सखेदत्व-गमनाऽशक्तत्वानां वक्तृनिष्ठत्वाद् हेतुका योर्भिन्नदेशत्वाद सङ्गतिरलङ्कार इति।

हिन्दी—जहां कार्य और कारण दोनों भिन्न-भिन्न देशों में स्थि हों अर्थात् कारण तथा कार्य की भिन्नदेशवृत्तिता का जहां व किया जाय वहां असङ्गति अलंकार होता है। उदाहरणार्थ—" बाला वयमप्रगल्भमनसः—" इत्यादि। अर्थ यह है कि "वह बाल परन्तु हम कातर हैं, वह पुष्ट और ऊंचे स्तनों को धारण क है और हम खिन्न हैं, वह ज्यादा बोझवाले जघनस्थल से पीड़ि और हम चलने में असमर्थ हैं; अन्य जन में स्थित दोषों से असमर्थ हो रहे हैं-यह आश्चर्य है।

यहां पर कारणभूत बालात्व-स्त्रीत्व-पीनोन्नतिमत्पयोधरयु धारकत्व-जघनस्थलाक्रान्तत्व आदि नायिका में स्थित है पर कार्यभूत अप्रगल्भमनस्त्व-कातरत्व-सखेदत्व-गमनाशक्तत्व आ नायक में स्थित है। अतः कार्य और कारण के भिन्न-भिन्न देश स्थित होने से यहां असङ्गति अलंकार है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

असङ्गतिः (चन्द्रालोकः)

लक्षणम्—"आख्याते भिन्नदेशत्वे कार्यहेत्वोरसङ्गतिः ।"

अर्थाद्यत्र कार्यकारणयोर्भिन्नदेशत्वं वर्णितम्भवति तत्रासङ्गतिरलङ्कारो भवतीति । उदाहरणं यथा—

"त्वद्भक्तानां नमत्यङ्गं भङ्गमेति भवक्लमः ॥"

ईश्वरं प्रति कस्यचिदुक्तिरियम् । अर्थस्तु हे भगवन् ! "त्वद्भक्तानां अङ्गं नमति भवक्लमस्तु नाशं प्राप्नोति । यतोहि भङ्गं प्रति नमनं कारणं भवति, अतः यत्र नमनं तत्रैव भङ्गोप्युचितः, किन्त्वत्र भगवद्भक्तानामङ्गेषु नमनमस्ति, भवक्लमस्य भङ्गश्च जायत इति । तस्मादत्र कार्यकारणयोर्भिन्नदेशवृत्तित्वादसङ्गतिरलंकारोऽस्तीति ।

हिन्दी—जहाँ कार्य और कारण में भिन्नदेशवृत्तिता वर्णित होती है वहाँ असङ्गति अलंकार होता है । उदाहाणार्थ—"त्वद्भक्तानाम्—" इत्यादि । अर्थ यह है कि "तुम्हारे भक्तों के अङ्ग झुक रहे हैं और सांसारिक दुःखों का विनाश हो रहा है ।" यहाँ नमन-रूप कारण भक्तों के अङ्ग में तथा भङ्ग रूप कार्य सांसारिक दुःखों में वर्णित है । अतएव यहाँ कारण और कार्य का अलग-अलग स्थान में वर्णन होने से असङ्गति अलंकार है ।

२१ अन्योन्यम् (साहित्यदर्पणः)

लक्षणम्—"अन्योन्यमुभयोरेकक्रियायाः कारणं मिथः ।"

अर्थाद्यत्र उभयोः पदार्थयोः एकक्रियायाः परस्परविधानं भवति तत्र अन्योन्याऽलङ्कारो भवतीति । उदाहरणं यथा—

"त्वया सा शोभते तन्वी, तया त्वमपि शोभते ।
रजन्या शोभते चन्द्रश्चन्द्रेणापि निशीथिनी ॥"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अत्र काचित्सखी नायकं प्रति नायिकानायकयोः सदृष्टान्तं शो
वर्णयति यत्—"हे महाशय ! सा तन्वी त्वया शोभते, त्वमपि
तन्व्या शोभां प्राप्नोषि । तथा च–चन्द्रः रजन्या शोभते, रात्रिरपि चन्
शोभते" इति । अत्र नायकनायिकयोः रजनीचन्द्रयोश्च परस्परं शो
नैकक्रियाकारकत्वादन्योन्याऽलङ्कारोऽस्तीति ।

हिन्दी—जहाँ दोनों पदार्थ परस्पर एक ही क्रिया प्रतिपादित
वहाँ अन्योन्य अलंकार होता है । जैसे—"त्वया सा शोभते—इत्या
भावार्थ यह है कि कोई सखी नायक से नायक-नायिका के शोभा
दृष्टान्तसहित वर्णन करते हुए कहती है कि "वह सुन्दरी तुम से शो
होती है और तुम उससे शोभित होते हो । जैसे रात्रि चन्द्रमा से शो
होती है और चन्द्रमा रात्रि से शोभित होता है ।" यहाँ पर ना
तथा नायिका एवं रात्रि तथा चन्द्रमा की परस्पर शोभनरूप एक क्रि
कारकता होने से अन्योन्य अलंकार है ।

अन्योन्यम् (चन्द्रालोकः)

लक्षणम्—"अन्योन्यं नाम यत्र स्यादुपकारः परस्परम् ।"

अर्थाद्यत्र द्वयोः परस्परमुपकार्योपकारकता भवति तत्र अन्यो
ऽलङ्कारो भवतीति । उदाहरणं यथा—

"त्रियामा शशिना भाति शशी भाति त्रियामया ।"

भावार्थस्तु—त्रियामा = रात्रिः शशिना शोभते, शशी = रा
त्रियामया शोभते इति । अत्र त्रियामाशशिनोः परस्परमुपकार्योप
कत्वादन्योन्यालङ्कारोऽस्तीति ।

हिन्दी—जहाँ दो में परस्पर उपकार्योपकारकभाव होता है
अन्योन्य नामक अलंकार होता है । जैसे—"त्रियामा शशिना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इत्यादि। अर्थात् "चन्द्रमा से रात्रि शोभा को प्राप्त करती है और रात्रि से चन्द्रमा शोभायमान होता है। यहाँ पर चन्द्रमा और रात्रि का परस्पर उपकार्योपकारकता होने से अन्योन्य नामक अलंकार है।

(३२) प्रतीपम् (साहित्यदर्पणः)

लक्षणम्—"प्रसिद्धस्योपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम्।
निष्फलत्वाभिधानं वा प्रतीपमिति कथ्यते॥"

अर्थाद्यत्र—प्रसिद्धस्य = प्रख्यातस्य उपमेयस्य = सादृश्यप्रतियोगिनः उपमेयत्वप्रकल्पनमथवा निष्फलत्वाभिधानं भवति तत्र प्रतीपालङ्कारो भवतीति। अनेन प्रकारेण प्रतीपालङ्कारो द्विप्रकारको भवतीति। उदाहरणं यथोपमेयत्वकल्पनायाम्—

"यत्त्वन्नेत्रसमानकान्ति सलिले मग्नं तदिन्दीवरं
मेघैरन्तरितः प्रिये! तव मुखच्छायानुकारी शशी।
येऽपि त्वद्गमनानुकारिगतयः ते राजहंसा गता-
स्त्वत्सादृश्यविनोदमात्रमपि मे दैवेन न क्षम्यते॥"

अत्र नेत्रयोरुपमानत्वेनेन्दीवरम्, मुखस्योपमानत्वेन शशी, नायिका-गमनस्योपमानत्वेन राजहंसगतिरिति प्रख्याताः सन्ति किन्त्विन्दीवर-शशि-राजहंसगतीनामुपमेयतया नायिकानयन-मुख-गतीनामेवोपमानत्वेन च वर्णनात् उपमानस्योपमेयत्वकल्पनात्मको प्रतीपालङ्कारो भवतीति।

उपमानस्य निष्फलत्वाभिधाने प्रतीपस्योदाहरणं यथा—

"तद्वक्त्रं यदि, मुद्रिता शशिकथा, हा! हेम! सा चेद्द्युतिः।
तच्चक्षुर्यदि, हारितं कुवलयैस्तच्चेत्स्मितं, का सुधा?
धिक्कन्दर्पधनुर्भ्रुवौ यदि च ते, किं वा बहु ब्रूमहे
यत्सत्यं पुनरुक्तवस्तुविमुखः सर्गक्रमो वेधसः॥"

भावार्थस्तु—"तस्या वक्त्रं = मुखं यदि चेत् तदा चन्द्रसौन्दर्यप्रशंसा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का ? तस्याः कान्तिर्यदि चेत् तर्हि सुवर्णः अपि शोचनीयः। तस्
चक्षुर्यदि चेत् तर्हि नीलकमलैरपि पराजिताः। तस्याः मन्दहास्यं
चेत् तदा अमृतस्य का आवश्यकता ? तस्याः भ्रुवौ समक्षे कामदेवधनु
निन्दनीय एव। अधिकं किं वदामः, यत् ब्रह्मदेवस्य सृष्टिक्रमः पुनः
वस्तुनः विमुखः अस्ति, तत्सत्यमेव।"

अत्रोपमानत्वेन प्रसिद्धानां शशि-हेम-कुवलय-सुधा-कन्दर्पधनुषादी नायिकायाः द्युति-चक्षुष्-स्मित-भ्रूभिः निष्फलत्वं वर्णितमस्ति। अ प्रसिद्धस्योपमानस्य निष्फलत्वाभिधानरूपप्रतीपालङ्कारोऽस्तीति।

हिन्दी—जहाँ प्रख्यात उपमा के उपमेयत्व की कल्पना की जाती अथवा उस प्रसिद्ध उपमान की निष्फलता वर्णित होती है वहाँ ना अलंकार होता है। इस प्रकार से प्रतीप अलंकार दो प्रकार का हो है। उपमान के उपमेयत्व कल्पना में प्रतीप का उदाहरण जैसे—"यत न्नेत्रसमानकान्ति—"इत्यादि। भावार्थ यह है कि "तुम्हारे नयनों समान कान्ति वाले जो इन्दीवर (कमल) थे वे जल में विलीन हो ग तुम्हारे मुख की कान्ति का अनुकरण करने वाला चन्द्रमा भी मेघों आच्छादित हो गया और तुम्हारी गति के समान गतिवाले राजहंस चले गये। इस प्रकार भाग्य तुम्हारे सादृश्य के द्वारा मेरे होनेवा विनोद को भी सहन नहीं कर पा रहा है।" यहाँ नयनों के उपमान लिए प्रसिद्ध इन्दीवर, मुख के उपमान के लिए प्रसिद्ध चन्द्रमा औ नायिका की गति के उपमान के लिए प्रसिद्ध राजहंसों की गति की उपमे के रूप मे कल्पना किये जाने से प्रसिद्ध उपमान के उपमेयत्वकल्पना-रू प्रतीप अलंकार है।

उपमान के निष्फलत्वाभिधान में प्रतीप का उदाहरण जैसे-"तद्व यदि—" इत्यादि। भावार्थ यह है कि "उसके मुख के सामने चन्द्र की क्या कथा ? उसके अङ्गों के सामने सुवर्ण की क्या स्थिति ? उस आँखों के सामने नीलकमल पराजित हो गये, उसकी मुस्कान के साम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अमृत भी कुछ नहीं है। उसकी भौहों के सामने कामदेव भी कुछ नहीं है। अधिक क्या कहूँ, ब्रह्मा की सृष्टि में ऐसी कोई वस्तु ही नहीं जिससे तुम्हारे अङ्गों की उपमा दी जा सके।"

यहाँ उपमानत्वेन प्रसिद्ध चन्द्रमा, सुवर्ण, नीलकमल, अमृत तथा कामदेव के धनुष के निष्फलत्व का प्रतिपादन उपमेयभूत नायिका के मुख, कान्ति, चक्षु, मुस्कान तथा भौहों के द्वारा की गयी है। अतएव यहाँ प्रसिद्ध उपमान के निष्फलत्वाभिधान नामक प्रतीप अलंकार है।

प्रतीपम् (चन्द्रालोकः)

लक्षणम्—"प्रतीपमुपमानस्य हीनत्वमुपमेयतः।"

अर्थाद्यत्र उपमेयात् उपमानस्य हीनत्वं=न्यूनत्वं वर्णितम्भवेत्तत्र प्रतीपालङ्कारो भवतीति। उपमेयापेक्षयोपमानस्य हीनत्वप्रतिपादने प्रतीपमित्याशयः। उदाहरणन्तु—

"दृष्टं चेद्वदनं तस्याः किं पद्मेन किमिन्दुना ?"

अर्थात्—तस्याः वदनं दृष्टञ्चेत् तदा पद्मेन किम् ? इन्दुना वा किम् ?" प्रेयसीमुखावलोकनानन्तरं पद्मचन्द्रावलोकनस्य प्रयोजनमेव नास्तीति भावः। अत्र किं पद्मेनेत्यादौ काक्वा पद्मचन्द्रयोः प्रयोजनाभावकथनेन वैयर्थ्यप्रतिपादनात् न्यूनताप्रतीत्या प्रतीपालंकारोऽस्तीति।

हिन्दी—जहाँ उपमेय की अपेक्षा उपमान की हीनता वर्णित होती है वहाँ प्रतीप अलंकार होता है। उदाहरणार्थ—"दृष्टं चेद्वदनम्—"इत्यादि। अर्थात्—"यदि उसका मुख दृष्ट है तो कमल और चन्द्रमा से क्या काम ?" आशय यह है कि उसके मुख देख लेने पर कमल और चन्द्रमा के अवलोकन क प्रयोजन ही नहीं है। यहाँ उपमेयभूत मुख की अपेक्षा उपमानभूत कमल और चन्द्रमा में हीनत्व वर्णित होने से प्रतीप अलंकार है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(२३) स्वभावोक्तिः (साहित्यदर्पणः)

लक्षणम्—"स्वभावोक्तिर्दुरूहार्थस्वक्रियारूपवर्णनम् ।"

अर्थाद्यत्र सामान्यजनैः ज्ञातुमशक्यानां सहृदयमात्रवेद्यानां शिश्वादी चेष्टानां स्वभावस्य च वर्णनं भवति तत्र स्वभावोक्तिरलङ्कारो जा इति । उदाहरणं यथा—

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः
पश्चार्द्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम् ।
शष्पैरर्द्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ।।

प्रस्तुतोदाहरणे महाराजदुष्यन्तशरपतनभयाद् भयभीतहरिण स्वभाववर्णितत्वात् स्वभावोक्तिरलंकारोऽस्तीति ।

हिन्दी—जहाँ सामान्य जन के न जानने योग्य केवल सहृदयों द्वारा संवेद्य बालक आदि (पशु-पक्षी आदि) की चेष्टाओं तथा स्वभ का वर्णन किया जाता है वहाँ स्वभावोक्ति अलंकार होता है ।

उदाहरणार्थ—"ग्रीवाभङ्गाभिरामम्—' इत्यादि । अर्थ यह है "अपने पीछे दौड़ने वाले रथ पर अपनी ग्रीवा को सुन्दर ढंग से मोड़ दृष्टि को लगाता हुआ, बाण लगने के भय से शरीर को बारम्ब सिकोड़ता हुआ, परिश्रम के कारण खुले हुए मुख से आधे चबाये तृणों से मार्ग को व्याप्त करता हुआ यह मृग अपनी लम्बी-लम् छलाङ्गों के कारण पृथिवी पर कम आकाश में ही ज्यादा चल रहा है

यहाँ राजा दुष्यन्त के बाण लगने के भय से भयभीत हरिण स्वभाव का वर्णन किया गया है । अतएव यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार

स्वभावोक्तिः (चन्द्रालोकः)

लक्षणम्—"स्वभावोक्तिः स्वभावस्य जात्यादिषु च वर्णनम्" ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थाद्यत्र जात्यादिषु–सिंहव्याघ्रहरिणादिजातीनां चेष्टादेः स्वभावस्य च वर्णनं भवति तत्र स्वभावोक्तिरलंकारो जायत इति। उदाहरणं यथा—

"कुरङ्गैरुत्तरङ्गाक्षि स्तब्धकर्णैरुदीक्ष्यते"।

अर्थात् कुरङ्गैः=मृगैः चञ्चलनेत्रैः स्तब्धकर्णैश्चोदीक्ष्यते इति। अत्र मृगाणां जातिस्वभावस्य चेष्टादेश्च वर्णनत्वात् स्वभावोक्तिरलङ्कारोऽस्तीति।

हिन्दी—जहाँ सिंह, व्याघ्र, हरिण आदि जातियों के स्वाभाविक क्रिया अथवा रूप का वर्णन किया जाय वहाँ स्वभावोक्ति अलंकार होता है। उदाहरणार्थ—"कुरङ्गैरुत्तरङ्गाक्षि—" इत्यादि। अर्थ यह है कि—"मृग नेत्रों को चञ्चल करते हुए तथा कानों को निश्चल रखकर देखते हैं"। यहाँ पर मृग के जातिगत स्वभाव और चेष्टाओं का वर्णन किये जाने के कारण स्वभावोक्ति अलंकार है।

(२४) संसृष्टिः (साहित्यदर्पणः)

लक्षणम्—"मिथोऽनपेक्षयैतेषां स्थितिः संसृष्टिरुच्यते"।

अर्थाद्यत्र एकस्मिन्नेव पद्ये गद्ये वा परस्परनिरपेक्षया एकाधिकालङ्काराणां सन्निवेशो भवति तत्र संसृष्टिनामकोऽलङ्कारो भवतीति। संसृष्टिरियं शब्दालङ्काराणाम्, अर्थालङ्काराणाम् शब्दार्थालङ्काराणाञ्चेति नानाविधा भवितुमर्हतीति। तत्र शब्दालङ्कारसंसृष्टेरुदाहरणं यथा—

"देवः पायादपायान्नः स्मेरेन्दीवरलोचनः।
संसारध्वान्तविध्वंसहंसः कंसनिषूदनः॥"

प्रस्तुतोदाहरणे "पायादपायात्" इत्यत्र यमकालङ्कारः, "संसारध्वान्त—" इत्यादावनुप्रासालङ्कारः इति यमकानुप्रासशब्दालङ्कारयोः संसृष्टिनामकोऽलङ्कारोऽस्तीति।

अस्मिन्नेवोदाहरणे "स्मेरेन्दीवरलोचन" इत्यत्र समासगता लुप्तो-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पमा, "संसारध्वान्तविध्वंसहंसः" इत्यत्र रूपकालङ्कारः इति अर्थाल
ङ्कारयोरुपमारूपकयोश्च संसृष्टिरिति अर्थालङ्कारसंसृष्टेरुदाहरणम
इदमेव पद्यम् ।

एवम्प्रकारेण यमकानुप्रासरूपयोः शब्दालङ्कारयोरुपमारूपकयोरर्थ
लङ्कारयोश्च मिथोऽनपेक्षयाऽवस्थितत्वाच्छब्दार्थालङ्कारसंसृष्टि
अस्मिन्नेवोदाहरणे दृश्यत इति ।

हिन्दी—जहाँ एक ही पद्य अथवा गद्य में परस्पर निरपेक्ष भाव
एकाधिक अलङ्कारों का सन्निवेश होता है उसे संसृष्टि अलंकार कहते हैं
यह संसृष्टि शब्दालङ्कारों की, अर्थालङ्कारों की और शब्दार्थालङ्कार
की भी होती है। इस प्रकार यह संसृष्टि अनेक प्रकार की होती है।

शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार और शब्दार्थालङ्काररूपा संसृष्टि—इन
तीनों को प्रस्तुत एक ही पद्य में देखा जा सकता है, जैसे—"देवः पायाद
पायान्नः—" इत्यादि। अर्थात्—"विकसित नीलकमलों के समान
नेत्रवाले, संसाररूपी अन्धकार के विध्वंस में सूर्यसदृश, कंस के संहार
देव भगवान् श्रीकृष्ण हमलोगों की विनाश होने से रक्षा करें।"

यहाँ पर "पायादपायात्" में यमक अलंकार है और "संसार
ध्वान्त०" इत्यादि में अनुप्रास (वृत्यनुप्रास) अलंकार है। इस प्रकार
यहाँ यमक और वृत्यनुप्रास नामक दो शब्दालंकारों की संसृष्टि है।

दूसरे चरण में "स्मेरेन्दीवरलोचनः" यहाँ उपमा अलंकार है और
उत्तरार्द्ध में "संसारध्वान्तविध्वंसहंसः" यहाँ रूपक है। इस तरह
उपमा अलंकार और रूपक अलंकार-रूपी अर्थालङ्कारों की संसृष्टि है।

इसी प्रकार प्रस्तुत पद्य में ही दो शब्दालङ्कारों और दो अर्था
लङ्कारों की परस्पर निरपेक्ष भाव से स्थिति होने के कारण शब्दा
लङ्कार और अर्थालङ्कार की भी संसृष्टि है।

नोट :—चन्द्रालोककार महाकवि जयदेव के अनुसार शुद्धि, एक
प्रधानत्व, संसृष्टि और संकर इन चारों को पृथग्वर्णित अलंकारों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रचना के प्रकारविशेष से स्वयमेव सम्पन्न हो जाने से ये पृथग् अलंकार के रूप में मान्य नहीं है। जैसा कि जयदेव ने कहा भी है—

"शुद्धिरेकप्रधानत्वं तथा संसृष्टिसंकरौ।
एतेषामेव विन्यासान्नालङ्कारान्तराण्यमी॥"

(२५) सङ्करः (साहित्यदर्पणः)

लक्षणम्—"अङ्गाङ्गित्वेऽलङ्कृतीनां तद्वदेकाश्रयस्थितौ।
सन्दिग्धत्वे च भवति सङ्करस्त्रिविधः पुनः॥"

अर्थाद्यत्र अलङ्कृतीनाम् अङ्गाङ्गित्वे = गुणप्रधानभावे एकस्मिन्नेवाश्रयावस्थाने सन्दिग्धत्वे च सति त्रिप्रकारको सङ्करालङ्कारो भवतीति। तत्र अङ्गाङ्गिभावसंकरस्योदाहरणं यथा—

"करोति कंसादिमहीभृतां वधाज्जनो मृगाणामिव यत्तव स्तवम्।
हरे! हिरण्याक्षपुरःसरासुरद्विपद्विषः प्रत्युत सा तिरस्क्रिया॥"

अस्मिन् पद्ये असुरा एव द्विपा इति रूपकं, मृगाणामिवेत्युपमा। यतो हि—उपमारूपकमुपकरोतीति रूपकालङ्कारोऽङ्गी, उपमा तु अङ्गभूतेति रूपकोपमयोः अङ्गाङ्गिभावसंकरोऽस्तीति।

एकाश्रयानुप्रवेशसङ्करस्योदाहरणं यथा—"संसारध्वान्तविध्वंसहंस"—इत्यादि। अत्र रूपकानुप्रासयोः एकाश्रयाऽनुप्रवेशसङ्करोऽस्तीति।

सन्देहसंकरस्योदाहरणं यथा—

"इदमाभाति गगने भिन्दानं सन्ततं तमः।
अमन्दनयनानन्दकरं मण्डलमैन्दवम्॥"

अस्मिन्पद्ये नायिकामुखस्येन्दुमण्डलतया वर्णनादतिशयोक्तिः, अपि च मुखे इन्दुमण्डलस्यारोपाद् रूपकम्, अथवा मुखेन्दुमण्डलयोरेकधर्माभिसम्बन्धात् तुल्ययोगिता, चन्द्रस्याप्रकृतत्वात् दीपको वा। प्रस्तुतस्य मुखस्य गम्यत्वात् समासोक्तिर्वेति बहूनामलङ्काराणां सन्देहत्वात् सन्देहसंकरोऽस्तीति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दी—जहाँ कई अलङ्कार अङ्ग (प्रधान) और अङ्गी (गौण के रूप में रहें, एक ही आश्रय में रहें अथवा सन्दिग्ध रूप में रहें व संकर अलंकार होता है। इस प्रकार इसके तीन भेद दृष्टिगोचर हो हैं। अङ्गाङ्गिभाव संकर का उदाहरण जैसे—"करोति कंसादि इत्यादि। अर्थात्—"हे हर! मृग के समान छोटे-छोटे कंसादि राजा के वध से जो लोग आपकी प्रशंसा करते हैं वह स्तुति नहीं, अपि हिरण्याक्ष राक्षसरूपी बड़े हाथिओं के मारने से आपका तिरस्कार ही है'

यहाँ असुर में द्विप का आरोप होने से रूपक अलंकार है त कंसादि की मृगों से उपमा किये जाने के कारण उपमा अलंकार है यहाँ पर उपमा रूपक के उपकारकरूप में है। यहाँ रूपक अंगी औ उपमा अंग है। अतएव यह अङ्गाङ्गिभावरूप संकर अलंकार है।

एकाश्रयानुप्रवेशरूप संकर का उदाहरण जैसे—"संसारध्वान्तविध्व सहंस।" यहाँ पर रूपक और अनुप्रास का एकाश्रयानुप्रवेश है। अतए एकाश्रयानुप्रवेशरूप संकर अलंकार है।

सन्देहसंकर का उदाहरण जैसे—"इदमाभाति गगने"—इत्यादि अर्थात्—"व्याप्त अन्धकार को नष्ट करता हुआ नेत्रों को प्रचुर आन देनेवाला यह इन्दुमण्डल आकाश में शोभित हो रहा है।" यहाँ नायिका के मुख का इन्दुमण्डल के रूप में वर्णन होने से उपमान द्वारा उपमेय को निगीर्ण करने वाली अतिशयोक्ति मानी जाय या तथा इन्दुमण्डल इन दोनों का 'आभाति' क्रियारूप एक धर्म के स सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता मानी जाय अथवा अप्रस्तुत इन्दुमण के वर्णन से प्रस्तुत मुख की व्यंग्यता मानकर समासोक्ति मानी जाय इस प्रकार अनेक अलंकारों का सन्देह होने से यहाँ सन्देहसं अलंकार है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जय श्री

श्री गणेश

जय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

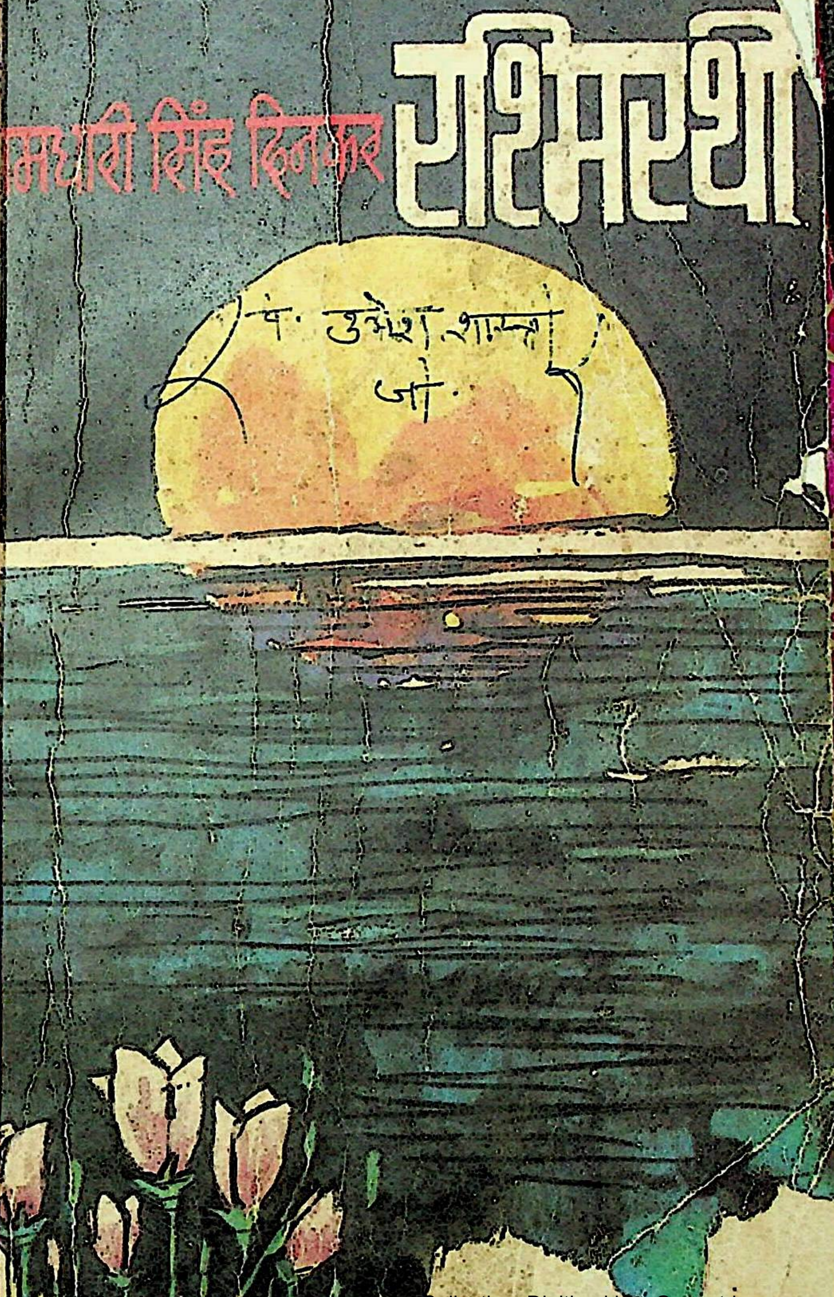

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रामधारी सिंह दिनकर

विरचित

रश्मिरथी

(संक्षिप्त)

मनोज गर्ग

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्,
दैवायत्तम कुले जन्म, मदायत्तम् तु पौरुषम्।

(महाभारत में कर्ण-वचन)

ब्रह्मण्यः सत्यवादी च तपस्वी नियतव्रत,
रिपुष्वपि दयावांश्च तस्मात् कर्णो वृषः स्मृतः।
बहुनात्र किमुक्तेन संक्षेपात् श्रृणं पाण्डव,
त्वत्समं त्वद्विशिष्टं वा कर्णम् मन्ये महारथम्।

(महाभारत में श्रीकृष्ण-वचन)

हृदय का निष्कपट, पावन क्रिया का,
दलित तारक, समुद्धारक त्रिया का,
बड़ा बेजोड़ दानी था, सदय था,
युधिष्ठिर! कर्ण का अद्भुत हृदय था।

(रश्मिरथीः सप्तम सर्ग)

मुमुक्षु भवन ... उदयाचल
राष्ट्रकवि दिनकर पथ
राजेन्द्रनगर-०-पटना-८०००१६
... की ओर से।
उदयाचल

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशक

केदार नाथ सिंह

उद्याचल, राष्ट्रकवि दिनकर पथ

राजेन्द्र नगर, पटना—800016

द्वारा

लोकभारती प्रकाशन

15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1

•

© केदार नाथ सिंह

•

पुनर्मुद्रण : २००३

•

मूल्य 16.00 रुपये मात्र

•

इण्डियन प्रेस प्रा० लिमिटेड

इलाहाबाद-1 द्वारा मुद्रित

•

ISBN 81-85341-04-4

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Name- Umesh chandra dwivedi

रामधारी सिंह
से
दिनकर तक

बिहार राज्य; जिला मुंगेर (अब बेगूसराय), गाँव सिमरिया—मिथिलाञ्चल का प्रसिद्ध तीर्थ, उसी के सामान्य-से काश्तकार बाबू रवि सिंह जी के घर दूसरे बेटे का जन्म हुआ, 23 सितम्बर, 1908 ई० को; नाम पड़ा रामधारी सिंह।

ढाई ही वर्ष के थे ये रामधारी सिंह, कि पिताजी चल बसे ! विधवा माँ करने लगीं बच्चों का लालन-पालन, परिवार का सञ्चालन–सहयोग मिला कुछ हितैषी कुटुम्बी-जन का।

परिस्थिति ठीक विपरीत–और पढ़ाई का चाव प्राणों बसा। गाँव से लोअर प्राइमरी कर, मिडिल तक पढ़ने 4 कि०मी० रोज चलकर बारो। फिर मैट्रिक तक प्रतिदिन 15 कि०मी० चलकर मोकामा। बीच में गंगा नदी। सन् 1928 में मैट्रिक। तब गाँव छुटा। पटना विश्वविद्यालय के पटना कॉलेज से इतिहास में प्रतिष्ठा सहित बी० ए०। इतना होते-होते 1932 ई० व्यतीत।

यूँ तो पढ़ने का चाव अन्तिम क्षण तक वैसा ही रहा—पर 1932 ई० के बाद आगे पढ़ने की व्यवस्था के अभाव में नौकरियों की खोज, क्योंकि परिवार के ज्येष्ठ। पहली नौकरी बरबीघा हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक पद पर, 1933-34 ई०. फिर निबन्धन विभाग के अवर निबन्धक के रूप में 1934 से 1942 तक। 1943 से 1945 ई० तक सांग पब्लिसिटी ऑफिसर, फिर जनसम्पर्क विभाग के उपनिदेशक पद पर, 1947 से 1950 तक। इसके बाद मुजफ्फरपुर के लंगट सिंह कॉलेज में हिन्दी प्राध्यापक 1950 से 52 तक।

स्वतंत्रता मिली और पहली संसद् गठित होने लगी तो अपने प्रेरक कवित्व के कारण कांग्रेस की ओर से निर्वाचित होकर, राज्य सभा के सदस्य रूप में 1952 से 1963 तक। 1963 से 1965 ई० तक भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति। अन्ततः, 1965 से 1972 तक भारत सरकार के गृहविभाग में हिन्दी सलाहकार।

24 अप्रिल 1974 को, रात्रि में, तिरुपति (आन्ध्र) में भगवान् व्यंकटेश्वर के दर्शनों से लौटकर, मद्रास में शरीर-त्याग।

श्री रामधारी सिंह के दिनकर-तत्त्व को पोषित-पल्लवित किया तुलसीजी के 'रामचरित मानस' तथा मैथिलीशरणजी गुप्त एवं माखनलालजी चतुर्वेदी की कविताओं ने। उनके मन पर जिनकी छाप पड़ी और जिनसे उन्होंने प्रेरणा ग्रहण की वे घटनाएँ और व्यक्तित्व हैं—अपने देश का स्वतन्त्रता-संग्राम, विश्वस्तर पर स्वातन्त्र्य-कामियों के संघर्ष, गांधीजी के कार्य और विचार, लेनिन के नायकत्व में निष्पादित क्रान्ति, भगत सिंह की और गणेश शंकर विद्यार्थी की शहादतें, स्वामी सहजानन्द सरस्वती का किसान आन्दोलन, स्वामी विवेकानन्दजी, राजा राममोहन रायजी, स्वामी दयानन्दजी सरस्वती, श्रीमती एनी बीसेण्ट, दो-दो विश्वयुद्ध और उनके कारण विचार-जगत् और साहित्य-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोक के संघर्ष-विवाद— उनके लगभग पाँच हज़ार पृष्ठों में प्रकाशित वाङ्मय मे सब की अनुगूंज स्पष्ट रेखांकित की जा सकती है।

कवित्व के धरातल पर रविबाबू, इकबाल और नजरुलइस्लाम से उन्होंने प्रेरणा ली। इन्हीं के आधार पर भारत जैसे महान राष्ट्र के पाँचवें असली राष्ट्रक सिद्ध हुए। ('राष्ट्रकवि' कहते किसे हैं, इसका विवरण कृपया पृष्ठ 128 पर देखें) राष्ट्रीयता का उद्घोषक और क्रान्ति का उद्गाता तो सभी ने माना। उनकी रेणुका, हुं सामधेनी आदि की कविताएँ स्वतन्त्रता-सेनानियों के लिए बड़ी प्रेरक सिद्ध हुईं। रूप में उन्हें बहुत अधिक लोकप्रियता मिली। लेकिन उनका दूसरा— अधिक मा पक्ष, इससे छिप भी गया।

किन्तु, कोमल भावनाओं की जो क्षीण धारा 'रेणुका' में प्रकट हुई थी, 'रस में सुविकसित होकर 'उर्वशी' के रूप में भुवनमोहिनी सिद्ध हुई। कहते हैं कि 'उ हिन्दी साहित्य का गौरव ग्रन्थ है! 'न भूतो'।

राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रीय स्वाभिमान का सबसे ज्वलन्त रूप प्रकट हुआ है उ सुविख्यात लम्बी कविता 'परशुराम की प्रतीक्षा' में; युद्ध और शान्ति की समस द्वन्द्व तो 'कुरुक्षेत्र' में व्यक्त होकर सुप्रतिष्ठित हो ही चुका है।

उनका गहन अध्ययन एवं सुगम्भीर चिन्तन मार्मिक अभिव्यक्ति पा स अधिकतर उनकी गद्य में। गद्य के अप्रतिम शैलीकार के रूप में उन्होंने वै निबन्ध, साहित्यिक आलोचना, बोध-कथाएँ, संस्मरण, यात्रा-विवरण— सभी लिखकर अपनी विलक्षण प्रतिभा से हिन्दी साहित्य को समृद्धतर किया है।

'संस्कृति के चार अध्याय' नामक विशाल ग्रन्थ उनकी गहन गवेषणा, अन्वेषण, भारतीय संस्कृति से उद्दाम प्रेम का विशिष्ट उपहार तो है ही, उनकी वि क्षमताओं का अत्यन्त सजीव प्रमाण भी है।

मानवता के प्रति प्रतिबद्धता, दलितों-दुखियों की दुर्दशा पर उत्साहपूर्ण रोष, भारत-प्रेम और भारत-धर्म की परिपूर्णतम अभिव्यक्ति उनके साहित्य के सु लक्षण हैं।

उनकी सर्वप्रथम प्रकाशित रचना 'बारदोली विजय' थी जो रीवाँ (मध्यप्रदेश 'छात्र-सहोदर' नामक पत्रिका में छपी थी। सन् 1929 ई० में पुस्तक रूप में 'प्रण शीर्षक खण्ड-काव्य प्रकाशित हुआ था। अन्तिम कविता-संग्रह था 'हारे को हरि शीर्षक, जो 1971 में प्रकाशित हुआ। गद्य-पद्य मिलाकर उनकी कुल रचनाएँ ल पचास हैं।

अनेक देशी-विदेशी भाषाओं में उनकी कविताएँ अनूदित हो चुकी हैं। उ बाल-कविताओं और अन्य फुटकर काव्य रचनाओं का रूसी अनुवाद बहुचर्चित सुप्रशंसित हो चुका है।

साहित्य अकादमी और ज्ञानपीठ पुरस्कारों से सम्मानित तथा 'पद्मभूषण' उपाधि से अलंकृत दिनकरजी भारतीय काव्य-गगन के अति देदीप्यमान नक्षत्र हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कथावस्तु

इस पुस्तक का नाम रश्मिरथी है, जिसका अर्थ होता है वह व्यक्ति, जिसका रथ रश्मि अर्थात् पुण्य का हो। इस काव्य में रश्मिरथी नाम कर्ण का है क्योंकि उसका चरित्र अत्यन्त पुण्यमय और प्रोज्ज्वल है।

कर्ण महाभारत महाकाव्य का अत्यन्त यशस्वी पात्र है। उसका जन्म पाण्डवों की माता कुन्ती के गर्भ से उस समय हुआ जब कुन्ती अविवाहिता थीं, अतएव, कुन्ती ने लोकलज्जा से बचने के लिए, अपने नवजात शिशु को एक मंजूषा में बन्द करके नदी में बहा दिया। वह मंजूषा अधिरथ नाम के सूत को मिली। अधिरथ के कोई सन्तान नहीं थी। इसलिए, उन्होंने इस बच्चे को अपना पुत्र मान लिया। उनकी धर्मपत्नी का नाम राधा था। राधा से पालित होने के कारण ही कर्ण का एक नाम राधेय भी है।

कौरव-पाण्डव का वंश-परिचय यह है कि दोनों महाराज शान्तनु के कुल में उत्पन्न हुए। शान्तनु से कई पीढ़ी ऊपर महाराज कुरु हुए थे। इसलिए, कौरव-पाण्डव दोनों कुरुवंशी कहलाते हैं। शान्तनु का विवाह गंगाजी से हुआ था, जिनसे कुमार देवव्रत उत्पन्न हुए। यही देवव्रत भीष्म कहलाये, क्योंकि चढ़ती जवानी में ही इन्होंने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का भीष्म अथवा भयानक प्रतिज्ञा की थी। महाराज शान्तनु ने निषाद-कन्या सत्यवती से भी विवाह किया था, जिससे उन्हें चित्रांगद और विचित्रवीर्य दो पुत्र हुए। चित्रांगद कुमारावस्था में ही एक युद्ध में मारे गये। विचित्रवीर्य के अम्बिका और अम्बालिका नाम की दो पत्नियां थीं, किन्तु, क्षय रोग हो जाने के कारण विचित्रवीर्य भी निःसन्तान ही मरे।

ऐसी अवस्था में वंश चलाने के लिए सत्यवती ने व्यासजी को आमन्त्रित किया। व्यासजी ने नियोग-पद्धति से विचित्रवीर्य की दोनों विधवा पत्नियों से पुत्र उत्पन्न किये। अम्बिका से धृतराष्ट्र और अम्बालिका से पाण्डु जन्मे। मातृ-दोष से धृतराष्ट्र जन्म से ही अन्धे और पाण्डु पीलिया के रोगी थे। अतएव, अम्बिका की प्रेरणा से व्यासजी ने उसकी दासी से तीसरा पुत्र उत्पन्न किया जिसका नाम विदुर हुआ।

राजा धृतराष्ट्र के सौ पुत्र एक ही पत्नी महारानी गन्धारी से हुए थे। महाराज पाण्डु के दो पत्नियां थीं, एक कुन्ती, दूसरी माद्री। परन्तु, ऋषि से मिले शाप के कारण वे स्त्री-समागम से विरत थे। अतएव, कुन्ती ने अपने पति की आज्ञा से तीन पुत्र तीन देवताओं से प्राप्त किये। जैसे कुमारावस्था में कुन्ती ने सूर्य-समागम से कर्ण को उत्पन्न किया था, उसी प्रकार; विवाह होने पर उसने धर्मराज से युधिष्ठिर, पवनदेव से भीम और इन्द्र से अर्जुन को उत्पन्न किया। माद्री के एक ही गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुए, एक नकुल, दूसरे सहदेव– ये दोनों भाई भी महाराज पाण्डु के अंश से नहीं, दो अश्विनीकुमारों के अंश से थे। पाण्डु के मरने पर माद्री सती हो गयीं और पाँचों पुत्रों के पालन का भार कुन्ती पर पड़ा। माद्री महाराज शल्य की बहन थीं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रथम सर्ग

कौरव और पाण्डव जब छात्रावस्था में थे, तब उन्हें शस्त्रास्त्र की शिक्षा देने के लिए द्रोणाचार्य नियुक्त किये गये। जब कुमारों की शिक्षा पूर्ण हो गयी, तब उनके रण-कौशल का जनता के समक्ष प्रदर्शन करने को एक सार्वजनिक आयोजन किया गया। इसी आयोजन में अचानक कर्ण प्रकट हुआ और चूँकि उस दिन सभा में सबसे अधिक प्रशंसा अर्जुन के अस्त्र-चालन की हुई थी, इसलिए कर्ण ने अपने साथ भिड़ने की चुनौती भी उसे ही दी। किन्तु, कृपाचार्य ने कहा कि जब तक यह विदित नहीं हो जाय कि कर्ण की जाति क्या है तथा वह राजपुत्र है या नहीं, तब तक अर्जुन उसके साथ लड़कर उसे सम्मान नहीं देगा। दुर्योधन को अर्जुन से द्वेष तो था ही, उसने सभा के समक्ष ही कर्ण को अंग देश का राजा बना दिया। फिर भीम और दुर्योधन में गाली-गलौज होने लगी, जिसे कृपाचार्य ने रोक दिया।

जब सभा विसर्जित हुई और लोग अपने-अपने घर जाने लगे, तब रास्ते में द्रोणाचार्य ने अर्जुन से कहा कि 'अर्जुन, कर्ण तुम्हारा वैरी और प्रतिबल होगा। मैंने एकलव्य का अँगूठा तो इसलिए कटवा लिया कि तुम्हारे समान धनुर्धर और कोई न हो। किन्तु, इस कर्ण के साथ क्या बर्ताव करें ? एक बात तो ठीक है कि मैं उसे अपना शिष्य नहीं बनाऊँगा।'

जब कृपाचार्य ने सभा में कर्ण की जाति पूछी थी, उस समय कुन्ती परदे के पीछे रनिवास में बैठी हुई थीं। किन्तु, उन्हें इतना साहस नहीं हुआ कि बढ़कर कृपाचार्य से यह कह दें कि कर्ण की माता मैं ही हूँ। फिर भी, शोक के कारण वे मूर्च्छित हो गयीं और जब घर लौटने लगीं, तब रथ तक जाने में भी उनके पाँव डगमगाने लगे।

द्वितीय सर्ग

रंग-ढंग से कर्ण को यह ज्ञात हो चुका था कि द्रोणाचार्य निश्छल होकर उसे धनुर्विद्या नहीं सिखायेंगे। इसलिए, शस्त्रास्त्र सीखने को वह उस समय के महा-प्रख्यात वीर, परशुराम जी की सेवा में पहुँचा। परशुराम संसार से अलग होकर उन दिनों महेन्द्रगिरि पर रहते थे। उनका प्रण था कि 'ब्राह्मणेतर जाति के युवकों को शस्त्रास्त्र की शिक्षा नहीं दूँगा।' किन्तु, जब उन्होंने कर्ण का तेजोद्दीप्त शरीर और उसके कवच-कुण्डल देखे, तब उन्हें स्वयं भासित हुआ कि यह ब्राह्मण का बेटा होगा। कर्ण ने गुरु की इस भ्रान्ति का खण्डन नहीं किया। वह माँ के पेट ही से सुवर्ण के कवच और कुण्डल पहने जनमा था। शस्त्रास्त्र की शिक्षा तो परशुराम जी ने उसे खूब दी, लेकिन एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना ने भण्डाफोड़ कर दिया। बात यह हुई कि एक दिन परशुराम कर्ण की जाँघ पर सिर रखकर सोये हुए थे; इतने में एक कीड़ा उड़ता हुआ आया और कर्ण की जाँघ के नीचे घुसकर घाव करने लगा। कर्ण इस भाव से निश्चल बैठा रहा कि हिलने-डुलने से गुरु की नींद उचट जायेगी। किन्तु, कीड़े ने उसकी जाँघ में ऐसा गहरा घाव कर दिया कि उससे लहू बह चला। पीठ में गर्म लहू का स्पर्श पाते ही परशुराम जग पड़े और सारी स्थिति समझते ही विस्मित हो रहे। उन्हें लगा, इतना धैर्य ब्राह्मण में कहाँ से आ सकता है ? अवश्य ही, कर्ण क्षत्रिय अथवा किसी अन्य जाति का युवक है। कर्ण सत्य को और छिपा नहीं सका तथा उसने गुरु के समक्ष सारी बातें स्वीकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर लीं। इस पर भी परशुराम शान्त न हुए और उन्होंने यह शाप दे डाला कि ब्रह्मास्त्र चलाने की जो शिक्षा मैंने दी है, उसे तू अन्तकाल में भूल जायेगा।

तृतीय सर्ग

कौरवों ने द्यूत के छल से पाण्डवों को तेरह वर्षों तक वनवास झेलने को विवश किया था। इन तेरह वर्षों में से बारह वर्षों तक पाण्डव वनों में खुलकर रह सकते थे, किन्तु तेरहवें वर्ष उन्हें अज्ञातवास करना था, जिसमें उन्हें कोई पहचान न सके। जब अज्ञातवास भी पूरा हो गया, तब पाण्डव इन्द्रप्रस्थ वापस आये और कौरवों तथा पाण्डवों के बीच सन्धि कराने को भगवान् कृष्ण हस्तिनापुर गये, जो कौरवों की राजधानी थी। लेकिन सन्धि की कौन कहे, दुर्योधन ने उल्टे भगवान् कृष्ण को गिरफ्तार करना चाहा। उस पर भगवान् को क्रोध आ गया और भरी सभा में उन्होंने अपना विराट् रूप प्रकट किया। कहते हैं, उनका क्रुद्ध विराट् रूप देखते ही लोग मूर्च्छित हो गये। केवल विदुरजी की चेतना ठीक रही। उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा, 'महाराज आश्चर्य की बात है कि भगवान् अपने विराट् रूप में विराज रहे हैं।' इस पर धृतराष्ट्र ने अपने अन्धे होने पर पश्चात्ताप किया। कहते हैं कि पश्चात्ताप करते ही विराट् रूप देखने तक के लिए उनको दृष्टि मिल गयी।

विराट् रूप समेटकर जब भगवान् कृष्ण कौरवों की सभा छोड़कर चले, तब उन्हें आदरपूर्वक नगर से कुछ दूर पहुँचाने के लिए उनके साथ कर्ण गया था। भगवान् को गिरफ्तार करने की दुरभिसन्धि में कर्ण का भी हाथ था। अतएव वह लज्जित होकर ही भगवान् के सामने आया था। किन्तु, राजनीति-विशारद कृष्ण ने बाँह पकड़ कर उसे अपने रथ में बिठा लिया और रास्ते में वे उसे समझाने लगे कि 'तू वास्तव में कुन्ती का पुत्र है। अतएव, तुझे चाहिए कि कौरवों को छोड़कर पाण्डवों के पक्ष में आ जाये। तू तो कुन्ती का पहला ही पुत्र है, अतएव, पाण्डवों की ओर से राज्याभिषेक हम तेरा ही करेंगे। सभी पाण्डव तेरे पीछे-पीछे चलेंगे और मैं भी तेरे पीछे ही चलूँगा।'

किन्तु, कर्ण इससे विचलित नहीं हुआ। उसने कहा कि 'जो रहस्य आप बतला रहे हैं, उसकी सूचना मुझे सूर्यदेव से पहले ही मिल चुकी है। किन्तु, कुन्ती ने मेरे साथ माता का बर्ताव नहीं किया। जो बात आप आज कह रहे हैं, उसे कुन्ती को उस दिन बतला देना चाहिए था, जिस दिन सबके सामने कृपाचार्य ने मेरी जाति पूछी थी। अब भला कौन विश्वास करेगा कि मैं कुन्ती का ही पुत्र हूँ ? इससे तो मुझे और अर्जुन, दोनों को कलंक लगने वाला है। इसके सिवा, जरा यह भी तो सोचिये कि दुर्योधन ने मेरे प्रति कैसा निश्छल व्यवहार किया है ? अब आज जब उस पर आपदाएँ आयी हैं, मैं उसे कैसे छोड़ सकता हूँ ? वह मेरा परम मित्र है और विपत्ति में मित्र का साथ न देना सबसे बड़ा पाप है। मैं राजा बनना नहीं चाहता, न यही चाहता हूँ कि संसार मुझे युधिष्ठिर के अग्रज रूप में जानकर मेरा सम्मान करे। मैं तो युद्ध के निमित्त तत्पर हूँ, यह इसलिए कि दुर्योधन का मेरे रोम-रोम पर ऋण है और मैं प्राण देकर भी उस ऋण को चुकाना चाहता हूँ। अतएव, अब युद्ध को रोक रखने का प्रयत्न व्यर्थ है। अब तो कोई शुभ दिन देखकर लड़ाई शुरू करा दीजिये।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चतुर्थ सर्ग

पाण्डवों को बराबर यह भय लगा था कि जब तक कर्ण प्रकृतिप्रदत्त काञ्चन क और कुण्डल से सुरक्षित है, तब तक युद्ध में उसे कोई मार नहीं सकेगा। इसलिए भग ने अर्जुन के देव-पिता इन्द्र से कहा कि किसी प्रकार कर्ण के शरीर से कवच-कु अलग कर दो। किन्तु, इन्द्र यह काम कैसे करता ? निदान उसने कर्ण की उदारता अपने आक्रमण का माध्यम बनाया और उसके पुण्य के द्वार पर ही उसे लूट लिया

कर्ण अपने समय का अप्रतिम दानवीर था। वह नित्य प्रति एक पहर तक की पूजा करता था और उस समय याचक उससे जो माँगते, कर्ण खुशी-खुशी दे द था। इन्द्र स्थिति का लाभ उठा कर उससे कवच और कुण्डल का दान माँगने आ सूर्य उसके पूर्व कर्ण को सावधान कर चुके थे कि आज इन्द्र ब्राह्मण का रूप ध तुमसे कवच-कुण्डल माँगने आयेगा, तुम देना नहीं। किन्तु इस चेतावनी का परिणाम नहीं निकला। इन्द्र जब भिक्षुक ब्राह्मण का वेश बनाकर कर्ण के सामने अ और उससे कवच और कुण्डल की याचना की, कर्ण 'नाहीं' न कर सका और सारे पड से अवगत होते हुए भी उसने कवच-कुण्डल के रूप में अपनी विजय तथा अपने जी का दान कर दिया। यह कर्ण के जीवन का सबसे बड़ा दान था।

अपनी लज्जा छिपाने को इन्द्र ने भी कर्ण को एकघ्नी नामक अस्त्र दिया अ कहा कि जिस किसी व्यक्ति पर तुम इसे चलाओगे, वह अवश्य मारा जायेगा। कि एक बार से अधिक तुम इसे नहीं चला सकोगे। यही अस्त्र कर्ण ने दुर्योधन के हठ कारण घटोत्कच पर चलाया। घटोत्कच तो मर गया, किन्तु एकघ्नी वापस इन्द्र के चली गयी।

पञ्चम सर्ग

जब कृष्ण के समझाने पर कर्ण नहीं माना और वह पाण्डवों के पक्ष में आने तैयार नहीं हुआ, तब वही प्रस्ताव लेकर कुन्ती उसके पास गयी। कुन्ती को कर्ण समक्ष जाकर उसे पुत्र कहकर पुकारने का साहस नहीं था। वह प्रतिदिन सोचती थी अब कर्ण को सब कुछ बताये बिना काम नहीं चलेगा; किन्तु, कर्ण की ओर जाने का साहस नहीं होता था। आखिरकार जब युद्धारम्भ को मात्र एक दिन रह गया, तब व सारी शक्ति समेट कर कर्ण के पास गयी और बोली कि 'तू मेरा बेटा और पाण्डवों क भाई है, अतएव इस युद्ध में इन्हीं का नेता बन।' कर्ण ने कुन्ती को उससे भी कड़ा उ दिया, जैसा उसने भगवान् कृष्ण को दिया था। कुन्ती बेचारी निरुत्तर हो गयी और कहकर जाने लगी कि 'सुनती थी कि तू बड़ा ही दानी है, किन्तु, आज माता को ही भी नहीं मिली।' यह सुनते ही कर्ण का वीर-हृदय द्रवित हो गया और उसने कहा कि 'य मेरे द्वार से कोई खाली हाथ नहीं जाता है, तो तुम भी निराश नहीं जाओगी। लो, मैं तु वचन देता हूँ कि अर्जुन के सिवा अन्य पाण्डवों को हाथ आया पाकर भी मैं उनका व नहीं करूँगा। हाँ, अर्जुन हाथ आया तो उसे जीवित छोड़ना मेरे वश की बात नहीं है।

कुन्ती बोली, 'यह दान भी कोई दान है ? मैं छह बेटों की माता बनने को आ थी, सो अब पाँच भी नहीं रहे, केवल चार बेटों की माता बनकर वापस जा रही हूँ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस पर कर्ण भावुकता में आ गया और बोला, 'छह और चार का हिसाब गलत है माँ, तुम जब तक जिओगी, पाँच बेटों की माता बनी रहोगी। इस युद्ध में यदि अर्जुन ने मुझे मार डाला तो पाँचों पाण्डव ज्यों-के-त्यों बने ही रहेंगे। हाँ, यदि अर्जुन मरा और विजय दुर्योधन की हुई, तो मैं दुर्योधन का पक्ष छोड़कर तुम्हारे पास आ जाऊँगा, जिससे पाण्डवों की संख्या पाँच-की-पाँच ही रह जाय।.... किन्तु मैं यह व्यर्थ कह रहा हूँ। जिसके रक्षक स्वयं कृष्ण हैं, उसका विनाश क्यों होगा ?'

षष्ठ सर्ग

भीष्म कर्ण से, प्रत्यक्षतः घृणा करते थे, जिसका कारण यह था कि दुर्योधन अधिकतर कर्ण के कहने में था। एक प्रकार से दुर्योधन के प्रेम और विश्वास को लेकर भीष्म और कर्ण में भीतर-भीतर प्रतिस्पर्द्धा चलती थी। अतएव भीष्म कभी भी कर्ण से मीठी बात नहीं बोलते थे। युद्धारम्भ के पूर्व उन्होंने कर्ण के बेटे को तो रथी कहा, कर्ण को **'अर्धरथी'** कह दिया। इसका कर्ण बुरा मान गया और उसने कहा कि 'अब यह नहीं हो सकता कि आप और मैं एक साथ रण में प्रवेश करें, क्योंकि महारथी के रहते अर्धरथी को वीरता का सुयश नहीं मिलेगा। अतएव, उचित यही है कि अकेले आप लड़ लें या मैं युद्ध करूँ।' निश्चित हुआ कि पहले भीष्म लड़ेंगे। और भीष्म जब तक लड़ते रहे, कर्ण ने शस्त्र नहीं उठाया। दस दिनों बाद जब भीष्म शरशय्या पर गिरे, तब द्रोणाचार्य के सेनापतित्व में कर्ण ने संग्राम में प्रवेश किया।

षष्ठ सर्ग का आरम्भ इसी प्रसंग से होता है, जब कर्ण युद्धारम्भ के पूर्व पितामह से आज्ञा लेने को उनके समीप जाता है। भीष्म कहते हैं कि अब युद्ध समाप्त हो जाना चाहिए। किन्तु रणोन्मत्त कर्ण उनका उपदेश नहीं मानता। वह युद्ध में प्रवेश करता और पाण्डवी सेना को तहस-नहस कर डालता है।

इसी प्रसंग में इस बात की विचिकित्सा की गयी है कि महाभारत का युद्ध धर्मयुद्ध था या नहीं, उपसंहार यह निकलता है कि कोई भी युद्ध धर्मयुद्ध नहीं हो सकता। युद्ध के आदि, मध्य और अन्त सब पापयुक्त होते हैं। जब हिंसा आरम्भ हो गयी तब धर्म कहाँ रहा ? युद्ध मनुष्य इसलिए करता है कि वह जल्दी से अपना लक्ष्य प्राप्त कर ले। किन्तु, लक्ष्य की प्राप्ति को धर्म नहीं कहते। धर्म तो लक्ष्य की ओर सन्मार्ग से चलने का नाम है, धर्म साध्य नहीं, साधन को देखता है। किन्तु, युद्ध में प्रवृत्त होने पर मनुष्य का ध्यान साधन पर नहीं रहता, वह किसी भी प्रकार विजय चाहने लगता है। और यही आतुरता उसे पाप के पंक में ले जाती है, फिर क्या आश्चर्य कि युद्ध में प्रवृत्त होने पर, कौरव और पाण्डव, दोनों ने पाप किये, दोनों ने विजय-बिन्दु तक पहले पहुँच जाने को सन्मार्ग का त्याग किया !

इसके बाद, घटोत्कच-वध की कथा आती है। कर्ण का पाण्डव-सेना पर भयानक कोप देखकर भगवान् घटोत्कच को बुलाते हैं। उसके युद्ध में प्रवेश करते ही कौरवों की सेना में हाहाकार मच जाता है और दुर्योधन कर्ण से कहने लगता है कि अर्जुन का मस्तक तो अभी दूर है, एकघ्नी चलाकर तुमने घटोत्कच का तुरंत वध नहीं किया तो, हार तो अभी हुई जाती है।

निदान, कर्ण एकघ्नी का प्रयोग करता है। घटोत्कच की मृत्यु होती है, कौरवों के बीच हर्षोल्लास छा जाता है और पाण्डव रोने लगते हैं। परन्तु दो व्यक्ति हैं, जिनका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हँसना और रोना विशेष अर्थ रखता है। पाण्डवों की सेना में आर्तनाद है, किन्तु, भगवान् कृष्ण जी खोलकर हँस रहे हैं। कौरवों की सेना में उल्लास है, परन्तु उनका प्रधान वीर कर्ण ऐसा दिखता है, मानो उसका सर्वस्व लुट गया हो।

सप्तम सर्ग

घटोत्कच वध के बाद द्रोणाचार्य का निधन हुआ। द्रोणाचार्य के बाद कर्ण के सेनापतित्व की बारी आयी।

कर्ण विपरीत परिस्थितियों में लड़ा। कवच-कुण्डल तो वह पहले ही इन्द्र को दे चुका था। इन्द्र से एकघ्नी नामक जो अस्त्र उसे मिला था, वह भी घटोत्कच को मारकर उसके पास से चला गया था। फिर कुन्ती को उसने वचन दिया था कि अर्जुन के सिवा और पाण्डवों का वध मैं नहीं करूँगा। इस पर, शल्य को उसने सारथी बनाया। शल्य युधिष्ठिर का मामा था और पाण्डवों ने शल्य को सिखला रखा था कि जब आप कर्ण का रथ हाँकिये तब उसे दुर्वचन कहते रहिये जिससे उसका तेज मन्द होता जाय।

तब भी, कर्ण का पाण्डवी सेना पर भयानक आक्रमण हुआ और पाण्डवी पक्ष के वीर जवाब नहीं दे सके। कर्ण आज **प्राणपण** से लड़ रहा था। उसकी इच्छा थी कि अर्जुन और कृष्ण दोनों को बन्दी बनाकर समरभूमि में ही दुर्योधन का जय-तिलक सजा दिया जाय। वह उत्साह से लड़ रहा था। उसी समय धर्मराज युधिष्ठिर उसके सामने पड़ गये। युधिष्ठिर को उसने पकड़ तो लिया, किन्तु कुन्ती को दिये गये वचन को याद करके उसने उन्हें छोड़ दिया। उस दिन, इसी प्रकार भीम, नकुल और सहदेव भी उसके वश में आ गये। कर्ण उन्हें मार सकता था किन्तु, कुन्ती के कारण उसने चारों को जीवित छोड़ दिया।

इस स्थिति से किंचित कुपित होकर, किन्तु, वास्तव में, कर्ण का अपमान करने के लिए शल्य कहता है कि 'तू जो इस प्रकार पाण्डवों को छोड़े जा रहा है, इससे मालूम होता है तू अर्जुन के बाणों से डरकर कायर हो रहा है।' कर्ण कहता है कि 'मैंने चारों पाण्डवों को छोड़ दिया, यह भेद बताने लायक नहीं है। यह तो व्रत की वेदना है जिसे मैं भीतर-भीतर सहूँगा। मैंने इन चारों वीरों को नहीं छोड़ा है, प्रत्युत, पुण्य के चार फूल भगवान् पर चढ़ा दिये हैं।'

इतने में अर्जुन से उसका सामना होता है। अर्जुन को एक बार वह मूर्च्छित कर देता है। किन्तु, अर्जुन मूर्च्छा से जगकर फिर भयानक पराक्रम में प्रवृत्त हो जाता है। कर्ण और अर्जुन का यह संग्राम ऐसा घनघोर है कि दोनों पक्षों के वीर लड़ना छोड़कर इन्हीं का युद्ध देखने लग जाते हैं।

इसी बीच अश्वसेन सर्प आता है और कर्ण से प्रार्थना करता है कि 'मुझे तू अपने बाण पर चढ़ाकर अर्जुन पर फेंक तो सही, मैं अभी उसका खात्मा किये देता हूँ और तुझे विजय अनायास मिल जाती है।' महाभारत में लिखा है कि कर्ण ने अश्वसेन की सहायता यह कहकर अस्वीकृत कर दी कि 'साँप की सहायता से यदि एक सौ अर्जुनों का वध होता हो, तो भी मैं यह सहायता स्वीकार नहीं करूँगा। जो पतित, पामर, अनाचारी और मानवता का शत्रु है वह तो मेरा भी शत्रु ठहरा, फिर उसकी सहायता लेकर मैं अपने पुण्य को नष्ट क्यों करूँ ?'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसके बाद भगवान् कृष्ण कर्ण के शौर्य की प्रशंसा करते हैं और साथ ही साथ अर्जुन को कर्ण के विरुद्ध उत्तेजित भी। इतने में कर्ण को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास होता है और वह काल को धमकाकर शल्य से कहता है कि 'अब मेरा रथ वहाँ ले चलो जहाँ कृष्ण और अर्जुन के साथ पाण्डव पक्ष के सभी नामी वीर वर्तमान हों। आज साकार प्रलय के बीच घमासान मचाता हुआ मैं मृत्यु का वरण करूँगा।'

शल्य रथ को भगवान् के सामने ले जाता है। यहीं अभिशाप के कारण कर्ण के रथ के पहिये धरती में धँस जाते हैं और किसी प्रकार निकाले निकलते ही नहीं। कर्ण रथ से नीचे उतरकर उसे निकालने में तत्पर होता है किन्तु भगवान् कृष्ण का संकेत पाकर अर्जुन उसे निःशस्त्र अवस्था में ही, बाणों से बींधने लगता है। यहाँ कर्ण और कृष्ण का थोड़ा संवाद होता है, जिसमें दोनों पक्ष दोनों पक्षों पर दोषारोपण करते हैं। संवाद समाप्त होते-होते कर्ण अपने पुण्यबल का आह्वान करता है और सूर्य की ओर दृष्टि करके वह मृत्यु के लिए तैयार हो जाता है। अर्जुन के लिए यह अच्छा अवसर है। उसका एक बाण आकर कर्ण के गले में लगता है और कर्ण के प्राण तेजोमय रूप में उड़कर सूर्य में समा जाते हैं।

सर्ग का अन्त युधिष्ठिर और कृष्ण के संवाद में होता है। युधिष्ठिर कर्ण की मृत्यु पर हर्ष प्रकट करते हैं किन्तु भगवान् उदास हो जाते हैं। उनका कहना है कि 'यह विजय चरित्र खोकर हुई है। जीत असल में कर्ण की हुई। यह भूल जाइये कि कर्ण हमारा शत्रु था। वह द्रोण और भीष्म के समान आदर का पात्र है।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रथम सर्ग

'जय हो' जग में जले जहाँ भी, नमन पुनीत अनल को,
जिस नर में भी बसे, हमारा नमन तेज को, बल को।
किसी वृन्त पर खिले विपिन में, पर, नमस्य है फूल,
सुधी खोजते नहीं गुणों का आदि, शक्ति का मूल।

ऊँच-नीच का भेद न माने, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है,
दया-धर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है।
क्षत्रिय वही, भरी हो जिसमें निर्भयता की आग,
सबसे श्रेष्ठ वही ब्राह्मण है, हो जिसमें तप-त्याग।

तेजस्वी सम्मान खोजते नहीं गोत्र बतला के,
पाते हैं जग से प्रशस्ति अपना करतब दिखला के।
हीन मूल की ओर देख जग गलत कहे या ठीक,
वीर खींच कर ही रहते हैं इतिहासों में लीक।

जिसके पिता सूर्य थे, माता कुन्ती सती कुमारी,
उसका पलना हुआ धार पर बहती हुई पिटारी।
सूत-वंश में पला, चखा भी नहीं जननि का क्षीर,
निकला कर्ण सभी युवकों में तब भी अद्भुत वीर।

तन से समरशूर, मन से भावुक, स्वभाव से दानी,
जाति-गोत्र का नहीं, शील का, पौरुष का अभिमानी।
ज्ञान-ध्यान, शस्त्रास्त्र, शास्त्र का कर सम्यक् अभ्यास,
अपने गुण का किया कर्ण ने आप स्वयं सुविकास।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अलग नगर के कोलाहल से, अलग पुरी-पुरजन से,
कठिन साधना में उद्योगी लगा हुआ तन-मन से।
निज समाधि में निरत, सदा निज कर्मठता में चूर,
वन्यकुसुम-सा खिला कर्ण जग की आँखों से दूर।

नहीं फूलते कुसुम मात्र राजाओं के उपवन में,
अमित बार खिलते वे पुर से दूर कुञ्ज-कानन में।
समझे कौन रहस्य ? प्रकृति का बड़ा अनोखा हाल,
गुदड़ी में रखती चुन-चुन कर बड़े कीमती लाल।

जलद-पटल में छिपा, किन्तु रवि कब तक रह सकता है?
युग की अवहेलना शूरमा कब तक सह सकता है?
पाकर समय एक दिन आखिर उठी जवानी जाग,
फूट पड़ी सबके समक्ष पौरुष की पहली आग।

रंग-भूमि में अर्जुन था जब समाँ अनोखा बाँधे,
बढ़ा भीड़-भीतर से सहसा कर्ण शरासन साधे।
कहता हुआ, 'तालियों से क्या रहा गर्व में फूल?
अर्जुन ! तेरा सुयश अभी क्षण में होता है धूल।

'तूने जो-जो किया, उसे मैं भी दिखला सकता हूँ,
चाहे तो कुछ नयी कलाएँ भी सिखला सकता हूँ।
आँख खोल कर देख, कर्ण के हाथों का व्यापार,
फूले सस्ता सुयश प्राप्त कर, उस नर को धिक्कार।'

इस प्रकार कह लगा दिखाने कर्ण कलाएँ रण की,
सभा स्तब्ध रह गयी, गयी रह आँख टँगी जन-जन की।
मन्त्र-मुग्ध-सा मौन चतुर्दिक् जन का पारावार,
गूँज रही थी मात्र कर्ण की धन्वा की टंकार।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फिरा कर्ण, त्यों 'साधु-साधु' कह उठे सकल नर-नारी,
राजवंश के नेताओं पर पड़ी विपद् अति भारी।
द्रोण, भीष्म, अर्जुन, सब फीके, सब हो रहे उदास,
एक सुयोधन बढ़ा, बोलते हुए, 'वीर ! शाबाश !'

द्वन्द्व-युद्ध के लिए पार्थ को फिर उसने ललकारा,
अर्जुन को चुप ही रहने का गुरु ने किया इशारा।
कृपाचार्य ने कहा–'सुनो हे वीर युवक अनजान'
भरत-वंश-अवतंस पाण्डु की अर्जुन है संतान।

'क्षत्रिय है, यह राजपुत्र है, यों ही नहीं लड़ेगा,
जिस-तिस से हाथापाई में कैसे कूद पड़ेगा?
अर्जुन से लड़ना हो तो मत गहो सभा में मौन,
नाम-धाम कुछ कहो, बताओ कि तुम जाति हो कौन?'

'जाति ! हाय री जाति !' कर्ण का हृदय क्षोभ से डोला,
कुपित सूर्य की ओर देख वह वीर क्रोध से बोला
'जाति-जाति रटते, जिनकी पूँजी केवल पाषंड,
मैं क्या जानूँ जाति ? जाति हैं ये मेरे भुजदंड।

'ऊपर सिर पर कनक-छत्र, भीतर काले-के-काले,
शरमाते हैं नहीं जगत् में जाति पूछनेवाले।
सूत्रपुत्र हूँ मैं, लेकिन थे पिता पार्थ के कौन?
साहस हो तो कहो, ग्लानि से रह जाओ मत मौन।

'मस्तक ऊँचा किये, जाति का नाम लिये चलते हो,
पर, अधर्ममय शोषण के बल से सुख में पलते हो।
अधम जातियों से थर-थर काँपते तुम्हारे प्राण,
छल से माँग लिया करते हो अंगूठे का दान।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'पूछो मेरी जाति, शक्ति हो तो, मेरे भुजबल से,
रवि-समान दीपित ललाट से और कवच-कुण्डल से,
पढ़ो उसे जो झलक रहा है मुझमें तेज-प्रकाश,
मेरे रोम-रोम में अंकित है मेरा इतिहास।

'अर्जुन बड़ा वीर क्षत्रिय है, तो आगे वह आवे,
क्षत्रियत्व का तेज जरा मुझको भी तो दिखलावे।
अभी छीन इस राजपुत्र के कर से तीर-कमान,
अपनी महाजाति की दूँगा मैं तुमको पहचान।'

कृपाचार्य ने कहा 'वृथा तुम क्रुद्ध हुए जाते हो,
साधारण-सी बात, उसे भी समझ नहीं पाते हो।
राजपुत्र से लड़े बिना होता हो अगर अकाज,
अर्जित करना तुम्हें चाहिए पहले कोई राज।'

कर्ण हतप्रभ हुआ तनिक, मन-ही-मन कुछ भरमाया,
सह न सका अन्याय, सुयोधन बढ़कर आगे आया।
बोला—'बड़ा पाप है करना, इस प्रकार, अपमान,
उस नर का जो दीप रहा हो सचमुच, सूर्य समान।

'मूल जानना बड़ा कठिन है नदियों का, वीरों का,
धनुष छोड़ कर और गोत्र क्या होता रणधीरों का?
पाते हैं सम्मान तपोबल से भूतल पर शूर,
'जाति-जाति' का शोर मचाते केवल कायर क्रूर।

'किसने देखा नहीं, कर्ण जब निकल भीड़ से आया,
अनायास आतंक एक सम्पूर्ण सभा पर छाया।
कर्ण भले ही सूत्रपुत्र हो, अथवा श्वपच, चमार,
मलिन, मगर, इसके आगे हैं सारे राजकुमार।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'करना क्या अपमान ठीक है इस अनमोल रतन का,
मानवता की इस विभूति का, धरती के इस धन का!
बिना राज्य यदि नहीं वीरता का इसको अधिकार,
तो मेरी यह खुली घोषणा सुने सकल संसार।

'अंगदेश का मुकुट कर्ण के मस्तक पर धरता हूँ।
एक राज्य इस महावीर के हित अर्पित करता हूँ।'
रखा कर्ण के सिर पर उसने अपना मुकुट उतार,
गूँजा रंगभूमि में दुर्योधन का जय-जयकार।

कर्ण चकित रह गया सुयोधन की इस परम कृपा से,
फूट पड़ा मारे कृतज्ञता के भर उसे भुजा से।
दुर्योधन ने हृदय लगा कर कहा—'बन्धु! हो शान्त,
मेरे इस क्षुद्रोपहार से क्यों होता उद्भ्रान्त?

'किया कौन-सा त्याग अनोखा, दिया राज यदि तुझको!
अरे, धन्य हो जायँ प्राण, तू ग्रहण करे यदि मुझको।'
कर्ण और गल गया, 'हाय, मुझ पर भी इतना स्नेह!
वीर बन्धु! हम हुए आज से एक प्राण, दो देह।

'भरी सभा के बीच आज तूने जो मान दिया है,
पहले-पहल मुझे जीवन में जो उत्थान दिया है।
उऋण भला होऊँगा उससे चुका कौन-सा दाम?
कृपा करें दिनमान कि आऊँ तेरे कोई काम।'

घेर खड़े हो गये कर्ण को मुदित, मुग्ध पुरवासी,
होते ही हैं लोग शूरता-पूजन के अभिलाषी।
चाहे जो भी कहे द्वेष, ईर्ष्या, मिथ्या अभिमान,
जनता निज आराध्य वीर को, पर लेती पहचान।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लगे लोग पूजने कर्ण को कुंकुम और कमल से,
रंग-भूमि भर गयी चतुर्दिक् पुलकाकुल कलकल से।
विनयपूर्ण प्रतिवन्दन में ज्यों झुका कर्ण सविशेष,
जनता विकल पुकार उठी, 'जय महाराज अंगेश।

'महाराज अंगेश !' तीर-सा लगा हृदय में जा के,
विफल क्रोध में कहा भीम ने और नहीं कुछ पा के।
'हय की झाड़े पूँछ, आज तक रहा यही तो काज,
सूत-पुत्र किस तरह चला पायेगा कोई राज?'

दुर्योधन ने कहा—'भीम ! झूठे बकबक करते हो,
कहलाते धर्मज्ञ, द्वेष का विष मन में धरते हो।
बड़े वंश से क्या होता है, खोटे हों यदि काम?
नर का गुण उज्ज्वल चरित्र है, नहीं वंश-धन-धाम।

'सचमुच ही तो कहा कर्ण ने, तुम्हीं कौन हो, बोलो,
जनमे थे किस तरह ? ज्ञात हो, तो रहस्य यह खोलो:
अपना अवगुण नहीं देखता, अजब जगत् का हाल,
निज आँखों से नहीं सूझता, सच है अपना भाल।'

कृपाचार्य आ पड़े बीच में, बोले 'छिः ! यह क्या है ?
तुम लोगों में बची नाम को भी क्या नहीं हया है?
चलो, चलें घर को, देखो; होने को आयी शाम,
थके हुए होगे तुम सब, चाहिए तुम्हें आराम।'

रंग-भूमि से चले सभी पुरवासी मोद मनाते,
कोई कर्ण, पार्थ का कोई-गुण आपस में गाते।
सबसे अलग चले अर्जुन को लिए हुए गुरु द्रोण,
कहते हुए—'पार्थ ! पहुँचा यह राहु नया फिर कौन?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'जनमे नहीं जगत् में अर्जुन ! कोई प्रतिबल तेरा,
टँगा रहा है एक इसी पर ध्यान आज तक मेरा।
एकलव्य से लिया अँगूठा, कढ़ी न मुख से आह,
रखा चाहता हूँ निष्कंटक बेटा ! तेरी राह।

'मगर, आज जो कुछ देखा, उससे धीरज हिलता है,
मुझे कर्ण में चरम वीरता का लक्षण मिलता है।'
बढ़ता गया अगर निष्कंटक यह उद्भट भट बांल,
अर्जुन ! तेरे लिए कभी यह हों सकता है काल !

'सोच रहा हूँ क्या उपाय, मैं इसके साथ करूँगा,
इस प्रचंडतम धूमकेतु का कैसे तेज हरूँगा?
शिष्य बनाऊँगा न कर्ण को, यह निश्चित है बात;
रखना ध्यान विकट प्रतिभट का, पर तू भी हे तात!'

रंग-भूमि से लिए कर्ण को, कौरव शंख बजाते,
चले झूमते हुए खुशी में गाते, मौज मनाते।
कञ्चन के युग शैल-शिखर-सम सुगठित, सुघर सुवर्ण,
गलबाँही दे चले परस्पर दुर्योधन औ' कर्ण।

बड़ी तृप्ति के साथ सूर्य शीतल अस्ताचल पर से,
चूम रहे थे अंग पुत्र का स्निग्ध-सुकोमल कर से।
आज न था प्रिय उन्हें दिवस का समय सिद्ध अवसान,
विरम गया क्षण एक क्षितिज पर गति को छोड़ विमान।

और हाय, रनिवास चला वापस जब राजभवन को,
सबके पीछे चली एक विकला मसोसती मन को।
उजड़ गये हों स्वप्न कि जैसे हार गयी हो दाँव,
नहीं उठाये भी उठ पाते थे कुन्ती के पाँव।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वितीय सर्ग

शीतल, विरल एक कानन शोभित अधित्यका के ऊपर,
कहीं उत्स-प्रस्त्रवण चमकते, झरते कहीं शुभ्र निर्झर।
जहाँ भूमि समतल, सुन्दर है, नहीं दीखते हैं पाहन,
हरियाली के बीच खड़ा है, विस्तृत एक उटज पावन।

आस-पास कुछ कटे हुए पीले धनखेत सुहाते हैं,
शशक, मूस, गिलहरी, कबूतर घूम-घूम कण खाते हैं।
कुछ तन्द्रिल, अलसित बैठे हैं, कुछ करते शिशु का लेहन,
कुछ खाते शाकल्य, दीखते बड़े तुष्ट सारे गोधन।

हवन-अग्नि बुझ चुकी, गन्ध से वायु, अभी, पर, माती है,
भीनी-भीनी महक प्राण में मादकता पहुँचाती है,
धूप-धूम चर्चित लगते हैं तरु के श्याम छदन कैसे ?
झपक रहे हों शिशु के अलसित कजरारे लोचन जैसे।

बैठे हुए सुखद आतप में मृग रोमन्थन करते हैं,
वन के जीव विवर से बाहर हो विश्रब्ध विचरते हैं।
सूख रहे चीवर, रसाल की नन्हीं झुकी टहनियों पर,
नीचे बिखरे हुए पड़े हैं इंगुद-से चिकने पत्थर।

अजिन, दर्भ, पालाश, कमंडलु—एक ओर तप के साधन,
एक ओर हैं टँगे धनुष, तूणीर, तीर, बरछे भीषण।
चमक रहा तृण-कुटी-द्वार पर एक परशु आभाशाली,
लौह-दण्ड पर जड़ित पड़ा हो, मानो, अर्ध अंशुमाली।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रद्धा बढ़ती अजिन-दर्भ पर, परशु देख मन डरता है,
युद्ध-शिविर या तपोभूमि यह, समझ नहीं कुछ पड़ता है।
हवन-कुण्ड जिसका यह उसके ही क्या हैं ये धनुष-कुठार?
जिस मुनि की यह स्रुवा, उसी की कैसे हो सकती तलवार?

आयी है वीरता तपोवन में क्या पुण्य कमाने को?
या संन्यास साधना में है दैहिक शक्ति जगाने को?
मन ने तन का सिद्ध-यन्त्र अथवा शस्त्रों में पाया है?
या कि वीर कोई योगी से युक्ति सीखने आया है?

परशु और तप, ये दोनों वीरों के ही होते शृंगार,
क्लीव न तो तप ही करता है, न तो उठा सकता तलवार।
तप से मनुज दिव्य बनता है, षड् विकार से लड़ता है,
तन की समर-भूमि में लेकिन, काम खड्ग ही करता है।

किन्तु, कौन नर तपोनिष्ठ है यहाँ धनुष धरनेवाला?
एक साथ यज्ञाग्नि और असि की पूजा करनेवाला?
कहता है इतिहास, जगत् में हुआ एक ही नर ऐसा,
रण में कुटिल काल-सम क्रोधी तप में महासूर्य-जैसा!

मुख में वेद, पीठ पर तरकस, कर में कठिन कुठार विमल,
शाप और शर, दोनों ही थे, जिस महान् ऋषि के सम्बल।
यह कुटीर है उसी महामुनि परशुराम बलशाली का,
भृगु के परम पुनीत वंशधर, व्रती, वीर, प्रणपाली का।

हाँ-हाँ, वही, कर्ण की जाँघों पर अपना मस्तक धरकर,
सोये हैं तरुवर के नीचे, आश्रम से किञ्चित् हटकर।
पत्तों से छन-छन कर मीठी धूप माघ की आती है,
पड़ती मुनि की थकी देह पर और थकान मिटाती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर्ण मुग्ध हो भक्ति-भाव में मग्न हुआ-सा जाता है,
कभी जटा पर हाथ फेरता, पीठ कभी सहलाता है,
चढ़ें नहीं चींटियाँ बदन पर, पड़े नहीं तृण-पात कहीं,
कर्ण सजग है, उचट जाय गुरुवर की कच्ची नींद नहीं।

'वृद्ध देह, तप से कृश काया, उसपर आयुध-सञ्चालन,
हाय, पड़ा श्रम-भार देव पर असमय यह मेरे कारण।
किन्तु, वृद्ध होने पर भी अंगों में है क्षमता कितनी,
और रात-दिन मुझ पर दिखलाते रहते ममता कितनी।

'कहते हैं, 'ओ वत्स ! पुष्टिकर भोग न तू यदि खायेगा,
मेरे शिक्षण की कठोरता को कैसे सह पायेगा?
अनुगामी यदि बना कहीं तू खान-पान में भी मेरा,
सूख जायगा लहू, बचेगा हड्डी-भर ढाँचा तेरा।

'जरा सोच, कितनी कठोरता से मैं तुझे चलाता हूँ,
और नहीं तो एक पाव दिन भर में रक्त जलाता हूँ।
इसकी पूर्ति कहाँ से होगी, बना अगर तू संन्यासी,
इस प्रकार तो चबा जायगी तुझे भूख सत्यानाशी।

'पत्थर-सी हों मांस-पेशियाँ, लोहे-से भुजदण्ड अभय,
नस-नस में हो लहर आग की, तभी जवानी पाती जय।
विप्र हुआ तो क्या, रक्खेगा रोक अभी से खाने पर?
कर लेना घनघोर तपस्या वय चतुर्थ के आने पर।

'ब्राह्मण का है धर्म त्याग, पर, क्या बालक भी त्यागी हों?
जन्म साथ, शिलोञ्छवृत्ति के ही क्या वे अनुरागी हों?
क्या विचित्र रचना समाज की? गिरा ज्ञान ब्राह्मण-घर में,
मोती बरसा वैश्य-वेश्म में, पड़ा खड्ग क्षत्रिय-कर में।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खड्ग बड़ा उद्धत होता है, उद्धत होते हैं राजे,
इसीलिए तो सदा बनाते रहते वे रण के बाजे।
और करे ज्ञानी ब्राह्मण क्या? असि-विहीन मन डरता है,
राजा देता मान, भूप का वह भी आदर करता है।

'सुनता कौन यहाँ ब्राह्मण की, करते सब अपने मन की,
डुबो रही शोणित में भू को भूपों की लिप्सा रण की।
औ' रण भी किसलिए? नहीं जग से दुख-दैन्य भगाने को,
परशोषक, पथ-भ्रान्त मनुज को नहीं धर्म पर लाने को।

'रण केवल इसलिए कि राजे और सुखी हों, मानी हों,
और प्रजाएँ मिलें उन्हें, वे और अधिक अभिमानी हों।
रण केवल इसलिए कि वे कल्पित अभाव से छूट सकें,
बढ़े राज्य की सीमा, जिससे अधिक जनों को लूट सकें।

'रण केवल इसलिए कि सत्ता बढ़े, नहीं पत्ता डोले,
भूपों के विपरीत न कोई, कहीं, कभी, कुछ भी बोले।
ज्यों-ज्यों मिलती विजय, अहं नरपति का बढ़ता जाता है,
और जोर से वह समाज के सिर पर चढ़ता जाता है।

'अब तो है यह दशा कि जो कुछ है, वह राजा का बल है,
ब्राह्मण खड़ा सामने केवल लिए शंख-गंगाजल है।
कहाँ तेज ब्राह्मण में, अविवेकी राजा को रोक सके,
धरे कुपथ पर जभी पाँव वह, तत्क्षण उसको टोक सके।

'और कहे भी तो ब्राह्मण की बात कौन सुन पाता है?
यहाँ रोज राजा ब्राह्मण को अपमानित करवाता है।
चलती नहीं यहाँ पंडित की, चलती नहीं तपस्वी की,
जय पुकारती प्रजा रात-दिन राजा जयी यशस्वी की !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'सिर था जो सारे समाज का, वही अनादर पाता है।
जो भी खिलता फूल, भुजा के ऊपर चढ़ता जाता है।
चारों ओर लोभ की ज्वाला, चारों ओर भोग की जय;
पाप–भार से दबी-धँसी जा रही धरा पल-पल निश्चय।

'जब तक भोगी भूप प्रजाओं के नेता कहलायेंगे,
ज्ञान, त्याग, तप नहीं श्रेष्ठता का जबतक पद पायेंगे,
अशन-वसन से हीन, दीनता में जीवन धरनेवाले,
सहकर भी अपमान मनुजता की चिन्ता करनेवाले,

'कवि, कोविद, विज्ञान-विशारद, कलाकार, पण्डित, ज्ञानी,
कनक नहीं, कल्पना, ज्ञान, उज्ज्वल चरित्र के अभिमानी,
इन विभूतियों को जब तक संसार नहीं पहचानेगा,
राजाओं से अधिक पूज्य जब तक न इन्हें वह मानेगा,

'तब तक पड़ी आग में धरती, इसी तरह अकुलायेगी,
चाहे जो भी करे, दुखों से छूट नहीं वह पायेगी।
थकी जीभ समझा कर, गहरी लगी ठेस अभिलाषा को,
भूप समझता नहीं और कुछ, छोड़ खड्ग की भाषा को।

'रोक-टोक से नहीं सुनेगा, नृप समाज अविचारी है,
ग्रीवाहर, निष्ठुर कुठार का यह मदान्ध अधिकारी है।
इसीलिए तो मैं कहता हूँ, अरे ज्ञानियो ! खड्ग धरो,
हर न सका जिसको कोई भी, भू का वह तुम त्रास हरो।

'नित्य कहा करते हैं गुरुवर, 'खड्ग महाभयकारी है,
इसे उठाने का जग में हर एक नहीं अधिकारी है।
वही उठा सकता है इसको, जो कठोर हो, कोमल भी,
जिसमें हो धीरता, वीरता और तपस्या का बल भी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'वीर वही है जो कि शत्रु पर जब भी खड्ग उठाता है,
मानवता के महागुणों की सत्ता भूल न जाता है।
सीमित जो रख सके खड्ग को, पास उसी को आने दो,
विप्रजाति के सिवा किसी को मत तलवार उठाने दो।

'जब-जब मैं शर-चाप उठा कर करतब कुछ दिखलाता हूँ,
सुनकर आशीर्वाद देव का, धन्य-धन्य हो जाता हूँ।
'जियो, जियो अय वत्स ! तीर तुमने कैसा यह मारा है,
दहक उठा वन उधर, इधर फूटी निर्झर की धारा है।

'मैं शंकित था, ब्राह्म वीरता मेरे साथ मरेगी क्या,
परशुराम की याद विप्र की जाति न जुगा धरेगी क्या?
पाकर तुम्हें किन्तु, इस वन में, मेरा हृदय हुआ शीतल,
तुम अवश्य ढोओगे उसको मुझमें है जो तेज, अनल।

'जियो, जियो ब्राह्मणकुमार ! तुम अक्षय कीर्ति कमाओगे,
एक बार तुम भी धरती को निःक्षत्रिय कर जाओगे।
निश्चय, तुम ब्राह्मणकुमार हो, कवच और कुण्डल-धारी,
तप कर सकते और पिता-माता किसके इतना भारी?

'किन्तु हाय ! 'ब्राह्मणकुमार' सुन प्राण काँपने लगते हैं,
मन उठता धिक्कार, हृदय में भाव ग्लानि के जगते हैं।
गुरु का प्रेम किसी को भी क्या ऐसे कभी खला होगा?
और शिष्य ने कभी किसी गुरु को इस तरह छला होगा?

'पर मेरा क्या दोष ? हाय ! मैं और दूसरा क्या करता,
पी सारा अपमान, द्रोण के मैं कैसे पैरों पड़ता।
और पाँव पड़ने से भी क्या गूढ़ ज्ञान सिखलाते वे,
एकलव्य-सा नहीं अँगूठा क्या मेरा कटवाते वे ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'हाय, कर्ण, तू क्यों जन्मा था ? जन्मा तो क्यों वीर हुआ?
कवच और कुण्डल-भूषित भी तेरा अधम शरीर हुआ?
धँस जाये वह देश अतल में, गुण की जहाँ नहीं पहचान?
जाति-गोत्र के बल से ही आदर पाते हैं जहाँ सुजान?

'नहीं पूछता है कोई तुम व्रती, वीर या दानी हो?
सभी पूछते मात्र यही, तुम किस कुल के अभिमानी हो?
मगर, मनुज क्या करे ? जन्म लेना तो उसके हाथ नहीं,
चुनना जाति और कुल अपने बस की तो है बात नहीं।

'मैं कहता हूँ, अगर विधाता नर को मुट्ठी में भरकर
कहीं छींट दें ब्रह्मलोक से ही नीचे भूमण्डल पर,
तो भी विविध जातियों में ही मनुज यहाँ आ सकता है;
नीचे हैं क्यारियाँ बनीं, तो बीज कहाँ जा सकता है?

'कौन जन्म लेता किस कुल में ? आकस्मिक ही है यह बात,
छोटे कुल पर, किन्तु यहाँ होते तब भी कितने आघात!
हाय, जाति छोटी है, तो फिर सभी हमारे गुण छोटे,
जाति बड़ी, तो बड़े बनें, वे, रहें लाख चाहे खोटे।'

गुरु को लिए कर्ण चिन्तन में था जब मग्न, अचल बैठा,
तभी एक विषकीट कहीं से आसन के नीचे पैठा।
वज्रदंष्ट्र वह लगा कर्ण के उरु को कुतर-कुतर खाने,
और बनाकर छिद्र मांस में मन्द-मन्द भीतर जाने।

कर्ण विकल हो उठा, दुष्ट भौंरे पर हाथ धरे कैसे,
बिना हिलाये अंग कीट को किसी तरह पकड़े कैसे?
पर भीतर उस धँसे कीट तक हाथ नहीं जा सकता था,
बिना उठाये पाँव शत्रु को कर्ण नहीं पा सकता था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किन्तु, पाँव के हिलते ही गुरुवर की नींद उचट जाती,
सहम गयी यह सोच कर्ण की भक्तिपूर्ण विह्वल छाती।
सोचा, उसने, अतः, कीट यह पिये रक्त, पीने दूँगा,
गुरु की कच्ची नींद तोड़ने का, पर पाप नहीं लूँगा।

बैठा रहा अचल आसन से कर्ण बहुत मन को मारे,
आह निकाले बिना, शिला-सी सहनशीलता को धारे।
किन्तु, लहू की गर्म धार जो सहसा आन लगी तन में,
परशुराम जग पड़े, रक्त को देख हुए विस्मित मन में।

कर्ण झपट कर उठा इंगितों में गुरु से आज्ञा लेकर,
बाहर किया कीट को उसने क्षत में से उँगली देकर।
परशुराम बोले– 'शिव ! शिव ! तूने यह की मूर्खता बड़ी,
सहता रहा अचल, जाने कब से, ऐसी वेदना कड़ी।'

तनिक लजाकर कहा कर्ण ने, 'नहीं अधिक पीड़ा मुझको,
महाराज, क्या कर सकता है यह छोटा कीड़ा मुझको?
मैंने सोचा, हिला-डुला तो वृथा आप जग जायेंगे,
क्षण भर को विश्राम मिला जो नाहक उसे गँवायेंगे।

निश्चल बैठा रहा, सोच, यह कीट स्वयं उड़ जायेगा,
छोटा-सा यह जीव मुझे कितनी पीड़ा पहुँचायेगा?
पर, यह तो भीतर धँसता ही गया, मुझे हैरान किया,
लज्जित हूँ इसलिए कि सब-कुछ स्वयं आपने देख लिया।'

परशुराम गंभीर हो गये सोच न जाने क्या मन में,
फिर सहसा क्रोधाग्नि भयानक भभक उठी उनके तन में।
दाँत पीस, आँखें तरेरकर बोले– 'कौन छली है तू?
ब्राह्मण है या और किसी अभिजन का पुत्र बली है तू?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'सहनशीलता को अपनाकर ब्राह्मण कभी न जीता
किसी लक्ष्य के लिए नहीं अपमान-हलाहल पीता
सह सकता जो कठिन वेदना, पी सकता अपमान
बुद्धि चलाती जिसे, तेज का कर सकता बलिदान

'तेज-पुञ्ज ब्राह्मण तिल-तिल कर जले, नहीं यह हो सक
किसी दशा में भी स्वभाव अपना वह कैसे खो सक
कसक भोगता हुआ विप्र निश्चल कैसे रह सकता
इस प्रकार की चुभन, वेदना क्षत्रिय ही सह सकता

'तू अवश्य क्षत्रिय है, पापी ! बता, न तो, फल पावे
परशुराम के कठिन शाप से अभी भस्म हो जायेगा
'क्षमा, क्षमा, हे देव दयामय !' गिरा कर्ण गुरु के पद
मुख विवर्ण हो गया, अंग काँपने लगे भय से थर-थ

'सूत-पुत्र मैं शूद्र कर्ण हूँ, करुणा का अभिलाषी
जो भी हूँ, पर, देव, आपका अनुचर अन्तेवासी
छली नहीं मैं हाय, किन्तु छल का ही तो यह काम हु
आया था विद्या-संचय को, किन्तु, व्यर्थ बदनाम हु

'बड़ा लोभ था, बनूँ शिष्य मैं कार्त्तवीर्य के जेता
तपोदीप्त शूरमा, विश्व के नूतन धर्म-प्रणेता
पर, शंका थी मुझे, सत्य का अगर पता पा जावें
महाराज मुझ सूत-पुत्र को कुछ भी नहीं सिखावें

'बता सका मैं नहीं इसी से प्रभो ! जाति अपनी छो
करें देव विश्वास, भावना और न थी कोई खो
पर इतने से भी लज्जा में हाय, गड़ा-सा जाता
मारे बिना हृदय में अपने-आप मरा-सा जाता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छल से पाना मान जगत् में किल्विष है, मल ही तो है,
ऊँचा बना आपके आगे, सचमुच यह छल ही तो है।
पाता था सम्मान आज तक दानी, व्रती, बली होकर,
अब जाऊँगा कहाँ स्वयं गुरु के सामने छली होकर?

करें भस्म ही मुझे देव ! सम्मुख है मस्तक नत मेरा,
एक कसक रह गयी, नहीं पूरा जीवन का व्रत मेरा।
गुरु की कृपा ! शाप से जलकर अभी भस्म हो जाऊँगा,
पर, मदान्ध अर्जुन का मस्तक देव ! कहाँ मैं पाऊँगा?

यह तृष्णा, यह विजय-कामना, मुझे छोड़ क्या पायेगी?
प्रभु, अतृप्त वासना मरे पर भी मुझ को भरमायेगी।
दुर्योधन की हार देवता ! कैसे सहन करूँगा मैं?
अभय देख अर्जुन को मरकर भी तो रोज मरूँगा मैं?

परशुराम का शिष्य कर्ण, पर, जीवन-दान न माँगेगा,
बड़ी शान्ति के साथ चरण को पकड़ प्राण निज त्यागेगा।
प्रस्तुत हूँ, दें शाप, किन्तु अन्तिम सुख तो यह पाने दें,
इन्हीं पाद-पद्मों के ऊपर मुझको प्राण गँवाने दें।'

लिपट गया गुरु के चरणों से विकल कर्ण इतना कहकर,
दो कणिकाएँ गिरीं अश्रु की गुरु की आँखों से बह कर।
बोले–'हाय, कर्ण तू ही प्रतिभट अर्जुन का नामी है?
निश्छल सखा धार्त्तराष्ट्रों का, विश्व-विजय का कामी है?

अब समझा, किसलिए रात-दिन तू वैसा श्रम करता था,
मेरे शब्द-शब्द को मन में क्यों सीपी-सा धरता था।
देखें अगणित शिष्य, द्रोण को भी करतब कुछ सिखलाया,
पर तुझ-सा जिज्ञासु आज तक कभी नहीं मैंने पाया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'तू ने जीत लिया था मुझको निज पवित्रता के बल
क्या था पता, लूटने आया है कोई मुझको छल
किसी और पर नहीं किया, वैसा सनेह मैं करता
सोने पर भी धनुर्वेद का ज्ञान कान में भरता

'नहीं किया कार्पण्य, दिया जो कुछ था मेरे पास
तुझमें निज को सौंप शान्त हो, अभी-अभी प्रमुदित था
पापी, बोल अभी भी मुख से, तू न सूत, रथचालक
परशुराम का शिष्य विक्रमी, विप्रवंश का बालक

'सूत-वंश में मिला सूर्य-सा कैसे तेज प्रबल तुझ
किसने लाकर दिये, कहाँ से कवच और कुण्डल तुझ
सुत-सा रखा जिसे, उसको कैसे कठोर हो मारूँ
जलते हुए क्रोध की ज्वाला, लेकिन कहाँ उतारूँ

पद पर बोला कर्ण, 'दिया था जिसको आँखों का प
करना होगा ग्रहण उसी को अनल आज हे गुरु ज्ञा
बरसाइये अनल आँखों से, सिर पर उसे ! सँभा
दण्ड भोग जलकर मुनिसत्तम ! छल का पाप छुड़ा लूँ

परशुराम ने कहा–'कर्ण ! तू बेध नहीं मुझको
तुझे पता क्या सता रहा है मुझको असमञ्जस कै
पर, तूने छल किया, दण्ड उसका, अवश्य ही पा
परशुराम का क्रोध भयानक निष्फल कभी न जा

'मान लिया था पुत्र, इसी से, प्राण-दान तो देता
पर, अपनी विद्या का अन्तिम चरम तेज हर लेता
सिखलाया ब्रह्मास्त्र तुझे जो, काम नहीं वह आ
है यह मेरा शाप, समय पर उसे भूल तू जा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर्ण विकल हो खड़ा हुआ कह, 'हाय ! किया यह क्या गुरुवर?
दिया शाप अत्यन्त निदारुण, लिया नहीं जीवन क्यों हर?
वर्षों की साधना, साथ ही प्राण नहीं क्यों लेते हैं?
अब किस सुख के लिए मुझे धरती पर जीने देते हैं?'

परशुराम ने कहा—'कर्ण ! यह शाप अटल है, सहन करो,
जो कुछ मैंने कहा, उसे सिर पर ले सादर वहन करो।
इस महेन्द्र–गिरि पर तुमने कुछ थोड़ा नहीं कमाया है,
मेरा संचित निखिल ज्ञान तूने मुझसे ही पाया है।

'रहा नहीं ब्रह्मास्त्र एक, इससे क्या आता-जाता है?
एक शस्त्र-बल से न वीर, कोई सब दिन कहलाता है।
नयी कला, नूतन रचनाएँ, नयी सूझ नूतन साधन,
नये भाव, नूतन उमंग से, वीर बने रहते नूतन।

'तुम तो स्वयं दीप्त पौरुष हो, कवच और कुण्डल-धारी,
इनके रहते तुम्हें जीत पायेगा कौन सुभट भारी।
अच्छा लो वर भी कि विश्व में तुम महान् कहलाओगे,
भारत का इतिहास कीर्ति से और धवल कर जाओगे।

'अब जाओ, लो विदा वत्स, कुछ कड़ा करो अपने मन को,
रहने देते नहीं यहाँ पर हम अभिशप्त किसी ज़न को।
हाय छीनना पड़ा मुझी को, दिया हुआ अपना ही धन,
सोच-सोच यह बहुत विकल हो रहा, नहीं जानें क्यों मन ?

'व्रत का, पर निर्वाह कभी ऐसे भी करना होता है।
इस कर से जो दिया उसे उस कर से हरना होता है।
अब जाओ तुम कर्ण ! कृपा करके मुझको निःसंग करो।
देखो मत यों सजल दृष्टि से, व्रत मेरा मत भंग करो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'आह, बुद्धि कहती कि ठीक था, जो कुछ किया, परन्तु हृदय,
मुझसे कर विद्रोह तुम्हारी मना रहा, जाने क्यों, जय?
अनायास गुण-शील तुम्हारे, मन में उगते आते हैं,
भीतर किसी अश्रु-गंगा में मुझे बोर नहलाते हैं।

'जाओ, जाओ कर्ण ! मुझे बिलकुल असंग हो जाने दो,
बैठ किसी एकान्त कुंज में मन को स्वस्थ बनाने दो।
भय है, तुम्हें निराश देखकर छाती कहीं न फट जावे,
फिरा न लूँ अभिशाप, पिघलकर वाणी नहीं उलट जावे।

इस प्रकार कह परशुराम ने फिरा लिया आनन अपना,
जहाँ मिला था, वहीं कर्ण का बिखर गया प्यारा सपना।
छूकर उनका चरण कर्ण ने अर्घ्य अश्रु का दान किया,
और उन्हें जी-भर निहार कर मंद-मंद प्रस्थान किया।

परशुधर के चरण की धूलि लेकर,
उन्हें, अपने हृदय की भक्ति देकर,
निराशा से विकल, टूटा हुआ-सा,
किसी गिरि-शृंग से छूटा हुआ-सा,

चला खोया हुआ-सा कर्ण मन में,
कि जैसे चाँद चलता हो गगन में।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तृतीय सर्ग

हो गया पूर्ण अज्ञात वास, पांडव लौटे वन से सहास,
पावक में कनक-सदृश तप कर, वीरत्व लिए कुछ और प्रखर,
नस-नस में तेज-प्रवाह लिये,
कुछ और नया उत्साह लिये।

सच है, विपत्ति जब आती है, कायर को ही दहलाती है,
शूरमा नहीं विचलित होते, क्षण एक नहीं धीरज खोते,
विघ्नों को गले लगाते हैं,
काँटों में राह बनाते हैं।

मुख से न कभी उफ कहते हैं, संकट का चरण न गहते हैं,
जो आ पड़ता सब सहते हैं, उद्योग-निरत नित रहते हैं,
शूलों का मूल नसाने को,
बढ़ खुद विपत्ति पर छाने को।

है कौन विघ्न ऐसा जग में, टिक सके वीर नर के मग में?
खम ठोंक ठेलता है जब नर, पर्वत के जाते पाँव उखड़।
मानव जब जोर लगाता है,
पत्थर पानी बन जाता है।

गुण बड़े एक से एक प्रखर, हैं छिपे मानवों के भीतर,
मेंहदी में जैसे लाली हो, वर्तिका-बीच उजियाली हो।
बत्ती जो नहीं जलाता है
रोशनी नहीं वह पाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पीसा जाता जब इक्षु-दण्ड, झरती रस की धारा अखण्
मेंहदी जब सहती है प्रहार, बनती ललनाओं का सिंगा
जब फूल पिरोये जाते हैं,
हम उनको गले लगाते हैं।

वसुधा का नेता कौन हुआ? भूखण्ड-विजेता कौन हुआ
अतुलित यश क्रेता कौन हुआ? नव-धर्म प्रणेता कौन हुआ
जिसने न कभी आराम किया,
विघ्नों में रहकर नाम किया।

जब विघ्न सामने आते हैं, सोते से हमें जगाते
मन को मरोड़ते हैं पल-पल, तन को झँझोरते हैं पल-प
सत्पथ की ओर लगाकर ही,
जाते हैं हमें जगाकर ही।

वाटिका और वन एक नहीं, आराम और रण एक न
वर्षा, अंधड़, आतप अखंड, पौरुष के हैं साधन प्रच
वन में प्रसून तो खिलते हैं,
बागों में शाल न मिलते हैं।

कङ्करियाँ जिनकी सेज सुघर, छाया देता केवल अ
विपदाएँ दूध पिलाती हैं, लोरी आँधियाँ सुनाती
जो लाक्षा-गृह में जलते हैं,
वे ही शूरमा निकलते हैं।

बढ़कर विपत्तियों पर छा जा, मेरे किशोर ! मेरे ता
जीवन का रस छन जाने दे, तन को पत्थर बन जाने
तू स्वयं तेज भयकारी है,
क्या कर सकती चिनगारी है?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वर्षों तक वन में घूम-घूम, बाधा-विघ्नों को चूम-चूम,
सह धूप-घाम, पानी-पत्थर, पांडव आये कुछ और निखर।
सौभाग्य न सब दिन सोता है,
देखें, आगे क्या होता है,

मैत्री की राह बताने को, सबको सुमार्ग पर लाने को,
दुर्योधन को समझाने को, भीषण विध्वंस बचाने को,
भगवान् हस्तिनापुर आये
पांडव का संदेशा लाये।

'दो न्याय अगर तो आधा दो, पर, इसमें भी यदि बाधा हो,
तो दे दो केवल पाँच ग्राम, रक्खो अपनी धरती तमाम।
हम वहीं खुशी से खायेंगे,
परिजन पर असि न उठायेंगे!
दुर्योधन वह भी दे न सका, आशिष समाज की ले न सका,
उलटे, हरि को बाँधने चला, जो था असाध्य, साधने चला।
जब नाश मनुज पर छाता है,
पहले विवेक मर जाता है।

हरि ने भीषण हुंकार किया, अपना स्वरूप-विस्तार किया,
डगमग-डगमग दिग्गज डोले, भगवान् कुपित होकर बोले–
'जंजीर बढ़ा कर साध मुझे,
हाँ, हाँ दुर्योधन ! बाँध मुझे।
'यह देख, गगन मुझमें लय है, यह देख, पवन मुझमें लय है,
मुझमें विलीन झंकार सकल, मुझमें लय है संसार सकल।
अमरत्व फूलता है मुझमें,
संहार झूलता है मुझमें।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'उदयाचल मेरा दीप्त भाल, भूमंडल वक्षस्थल विशाल,
भुज परिधि-बन्ध को घेरे हैं, मैनाक-मेरु पग मेरे हैं।
दिपते जो ग्रह नक्षत्र निकर,
सब हैं मेरे मुख के अन्दर।

'दृग हों तो दृश्य अकाण्ड देख, मुझमें सारा ब्रह्माण्ड देख,
चर-अचर जीव, जग, क्षर-अक्षर, नश्वर मनुष्य सुरजाति अमर।
शत कोटि सूर्य, शत कोटि चन्द्र,
शत कोटि सरित, सर, सिन्धु मन्द्र।

'शत कोटि विष्णु, ब्रह्मा, महेश, शत कोटि विष्णु जलपति, धनेश,
शत कोटि रुद्र, शत कोटि काल, शत कोटि दण्डधर लोकपाल।
जञ्जीर बढ़ाकर साध इन्हें,
हाँ-हाँ दुर्योधन! बाँध इन्हें।

'भूलोक, अतल, पाताल देख, गत और अनागत काल देख,
यह देख जगत् का आदि-सृजन, यह देख, महाभारत का र...
मृतकों से पटी हुई भू है,
पहचान, कहाँ इसमें तू है।

'अम्बर में कुन्तल-जाल देख, पद के नीचे पाताल देख,
मुट्ठी में तीनों काल देख, मेरा स्वरूप विकराल देख।
सब जन्म मुझी से पाते हैं,
फिर लौट मुझी में आते हैं।

'जिह्वा से कढ़ती ज्वाल सघन, साँसों में पाता जन्म पव...
पड़ जाती मेरी दृष्टि जिधर, हँसने लगती है सृष्टि उध...
मैं जभी मूँदता हूँ लोचन,
छा जाता चारों ओर मरण।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'बाँधने मुझे तो आया है, जंजीर बड़ी क्या लाया है?
यदि मुझे बाँधना चाहे मन, पहले तो बाँध अनन्त गगन।
सूने को साध न सकता है,
वह मुझे बाँध कब सकता है?
'हित-वचन नहीं तूने माना, मैत्री का मूल्य न पहचाना,
तो ले, मैं भी अब जाता हूँ, अन्तिम संकल्प सुनाता हूँ।
याचना नहीं, अब रण होगा,
जीवन-जय या कि मरण होगा।
'टकरायेंगे नक्षत्र-निकर, बरसेगी भू पर वह्नि प्रखर,
फण शेषनाग का डोलेगा, विकराल काल मुँह खोलेगा।
दुर्योधन! रण ऐसा होगा।
फिर कभी नहीं जैसा होगा।

'भाई पर भाई टूटेंगे, विष-बाण बूँद-से छूटेंगे,
वायस-शृगाल सुख लूटेंगे, सौभाग्य मनुज के फूटेंगे।
आखिर तू भूशायी होगा,
हिंसा का पर, दायी होगा।'

थी सभा सन्न, सब लोग डरे, चुप थे या थे बेहोश पड़े।
केवल दो नर न अघाते थे, धृतराष्ट्र-विदुर सुख पाते थे।
कर जोड़ खड़े प्रमुदित, निर्भय,
दोनों पुकारते थे 'जय-जय'!

3

भगवान् सभा को छोड़ चले, करके रण-गर्जन घोर चले,
सामने कर्ण सकुचाया-सा, आ मिला चकित, भरमाया-सा।
हरि बड़े प्रेम से कर धर कर,
ले चढ़े उसे अपने रथ पर।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रथ चला, परस्पर बात चली, शम-दम की टेढ़ी घात चली,
शीतल हो हरि ने कहा, 'हाय, अब शेष नहीं कोई उपाय।
हो विवश हमें धनु धरना है,
क्षत्रिय-समूह को मरना है।

'मैंने कितना कुछ कहा नहीं? विष-व्यंग कहाँ तक सहा नहीं?
पर, दुर्योधन मतवाला है, कुछ नहीं समझनेवाला है।
चाहिए उसे बस रण केवल,
सारी धरती कि मरण केवल।

'हे वीर ! तुम्हीं बोलो अकाम, क्या वस्तु बड़ी थी पाँच ग्राम?
वह भी कौरव को भारी है, मति गई मूढ़ की मारी है।
दुर्योधन को बोधूँ कैसे?
इस रण को अवरोधूँ कैसे?

'सोचो क्या दृश्य विकट होगा, रण में जब काल प्रकट होगा?
बाहर शोणित की तप्त धार, भीतर विधवाओं की पुकार।
निरशन, विषण्ण बिललायेंगे,
बच्चे अनाथ चिल्लायेंगे।

'चिन्ता है, मैं क्या और करूँ? शान्ति को छिपा किस ओट धरूँ?
सब राह बन्द मेरे जाने, हाँ, एक बात यदि तू माने,
तो शान्ति नहीं जल सकती है,
समराग्नि अभी टल सकती है।

'पा तुझे धन्य है दुर्योधन, तू एकमात्र उसका जीवन।
तेरे बल की है आस उसे, तुझसे जय का विश्वास उसे।
तू संग न उसका छोड़ेगा,
वह क्यों रण से मुख मोड़ेगा?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'क्या अघटनीय घटना कराल? तू पृथा-कुक्षि का प्रथम लाल,
बन सूत अनादर सहता है, कौरव के दल में रहता है,
शर-चाप उठाये आठ प्रहर,
पांडव से लड़ने को तत्पर।

'माँ का सनेह पाया न कभी, सामने सत्य आया न कभी,
किस्मत के फेरे में पड़ कर, पा प्रेंम बसा दुश्मन के घर।
निज बन्धु मानता है पर को,
कहता है शत्रु सहोदर को।

'पर, कौन दोष इसमें तेरा? अब कहा मान इतना मेरा।
चल होकर संग अभी मेरे, हैं जहाँ पाँच भ्राता तेरे।
बिछुड़े भाई मिल जायेंगे,
हम मिलकर मोद मनायेंगे।

'कुन्ती का तू ही तनय ज्येष्ठ, बल, बुद्धि, शील में परम श्रेष्ठ।
मस्तक पर मुकुट धरेंगे हम, तेरा अभिषेक करेंगे हम।
आरती समोद उतारेंगे,
सब मिलकर पाँव पखारेंगे।

'पद-त्राण भीम पहनायेगा, धर्माधिप चँवर डुलायेगा।
पहरे पर पार्थ प्रवर होंगे, सहदेव-नकुल अनुचर होंगे।
भोजन उत्तरा बनायेगी,
पाञ्चाली पान खिलायेगी।

'आहा ! क्या दृश्य सुभग होगा ! आनन्द-चमत्कृत जग होगा।
सब लोग तुझे पहचानेंगे, असली स्वरूप में जानेंगे।
खोयी मणि को जब पायेगी,
कुन्ती फूली न समायेगी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'रण अनायास रुक जायेगा, कुरुराज स्वयं झुक जायेगा।
संसार बड़े सुख में होगा, कोई न कहीं दुःख में होगा।
सब गीत खुशी के गायेंगे,
तेरा सौभाग्य मनायेंगे।

'कुरुराज्य समर्पण करता हूँ, साम्राज्य समर्पण करता हूँ।
यश मुकुट मान, सिंहासन ले, बस एक भीख मुझको दे दे।
कौरव को तज रण रोक सखे,
भू का हर भावी शोक सखे।'

सुन-सुन कर कर्ण अधीर हुआ, क्षण एक तनिक गंभीर हुआ,
फिर कहा, 'बड़ी यह माया है, जो कुछ आपने बताया है।
दिनमणि से सुनकर वही कथा,
मैं भोग चुका हूँ ग्लानि-व्यथा।

'जब ध्यान जन्म का धरता हूँ, उन्मन यह सोचा करता हूँ,
कैसी होगी वह माँ कराल, निज तन से जो शिशु को निकाल,
धाराओं में धर आती है,
अथवा जीवित दफनाती है?

'सेवती मास दस तक जिसको, पालती उदर में रख जिसको,
जीवन का अंश खिलाती है, अन्तर का रुधिर पिलाती है
आती फिर उसको फेंक कहीं,
नागिन होगी, वह नारि नहीं।

'हे कृष्ण ! आप चुप ही रहिए, इस पर न अधिक कुछ भी कहिए
सुनना न चाहते तनिक श्रवण, जिस माँ ने मेरा किया जनन,
वह नहीं नारि कुलपाली थी,
सर्पिणी परम विकराली थी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'पत्थर-समान उसका हिय था, सुत से समाज बढ़ कर प्रिय था,
गोदी में आग लगा करके, मेरा कुल-वंश छिपा करके,
दुश्मन का उसने काम किया,
माताओं को बदनाम किया।

'माँ का पय भी न पिया मैंने, उलटे, अभिशाप लिया मैंने।
वह तो यशस्विनी बनी रही, सबकी भौं मुझपर तनी रही।
कन्या वह रही अपरिणीता,
जो कुछ बीता, मुझपर. बीता।

'मैं जाति-गोत्र से हीन, दीन, राजाओं के सम्मुख मलीन,
जब रोज अनादर पाता था, कह 'शूद्र' पुकारा जाता था।
पत्थर की छाती फटी नहीं,
कुन्ती तब भी तो कटी नहीं।

'मैं सूत-वंश में पलता था, अपमान-अनल में जलता था,
सब देख रही थी दृश्य पृथा, माँ की ममता, पर, हुई वृथा।
छिप कर भी तो सुधि ले न सकी,
छाया अञ्चल की दे न सकी।

'पा पाँच तनय फूली-फूली, दिन-रात बड़े सुख में भूली,
कुन्ती गौरव में चूर रही, मुझ पतित पुत्र से दूर रही।
क्या हुआ कि अब अकुलाती है?
किस कारण मुझे बुलाती है?

'क्या पाँच पुत्र हो जाने पर, सुत के धन-धाम गँवाने पर,
या महानाश के छाने पर, अथवा मन के घबराने पर,
नारियाँ सदय हो जाती हैं?
बिछुड़े को गले लगाती हैं?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'कुन्ती जिस भय से भरी रही, तज तुझे दूर हट खड़ी रही,
वह पाप अभी भी है मुझमें, वह शाप अभी भी है मुझमें।
क्या हुआ कि वह डर जायेगा?
कुन्ती को काट न खायेगा?

'सहसा क्या हाल विचित्र हुआ? मैं कैसे पुण्य-चरित्र हुआ?
कुन्ती का क्या चाहता हृदय? मेरा सुख या पाण्डव की जय?
यह अभिनन्दन नूतन क्या है?
केशव! यह परिवर्तन क्या है?

'मैं हुआ धनुर्धर जब नामी, सब लोग हुए हित के कामी,
पर, ऐसा भी था एक समय, जब यह समाज निष्ठुर निर्दय
किंचित् न स्नेह दर्शाता था,
विषव्यंग्य सदा बरसाता था।

'उस समय सुअंक लगा करके, अंचल के तले छिपा करके
चुम्बन से कौन मुझे भर कर, ताड़ना-ताप लेती थी हर?
राधा को छोड़ भजूँ किसको?
जननी है वही, तजूँ किसको?

'हे कृष्ण! जरा यह भी सुनिये, सच है कि झूठ, मन में गुनिये,
धूलों में था मैं पड़ा हुआ, किसका सनेह पा बड़ा हुआ?
किसने मुझको सम्मान दिया,
नृपता दे महिमावान किया?

'अपना विकास अवरुद्ध देख, सारे समाज को क्रुद्ध देख
भीतर जब टूट चुका था मन, आ गया अचानक दुर्योधन
निश्छल, पवित्र अनुराग लिये,
मेरा समस्त सौभाग्य लिये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'कुन्ती ने केवल जन्म दिया, राधा ने माँ का कर्म किया,
पर कहते जिसे असल जीवन, देने आया वह दुर्योधन।
वह नहीं भिन्न माता से है,
बढ़ कर सोदर भ्राता से है।

'राजा रंक से बना करके, यश, मान, मुकुट पहना करके,
बाँहों पर मुझे उठा करके, सामने जगत् के ला करके;
करतब क्या-क्या न किया उसने?
मुझको नव-जन्म दिया उसने।

'है ऋणी कर्ण का रोम-रोम, जानते सत्य यह सूर्य-सोम,
तन, मन, धन दुर्योधन का है, यह जीवन दुर्योधन का है।
सुरपुर से भी मुख मोडूँगा,
केशव! मैं उसे न छोडूँगा।

'सच है, मेरी है आस उसे, मुझपर अटूट विश्वास उसे,
हाँ, सच है मेरे ही बल पर, ठाना है उसने महासमर।
पर, मैं कैसा पापी हूँगा,
दुर्योधन को धोखा दूँगा?

'रह साथ सदा खेला, खाया, सौभाग्य-सुयश उससे पाया,
अब जब विपत्ति आने को है, घनघोर प्रलय छाने को है,
तज उसे भाग यदि जाऊँगा,
कायर, कृतघ्न कहलाऊँगा।

'मैं भी कुन्ती का एक तनय, जिसको होगा इसका प्रत्यय?
संसार मुझे धिक्कारेगा, मन में वह यही विचारेगा,
फिर गया तुरत, जब राज मिला,
यह कर्ण बड़ा पापी निकला।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'मैं ही न सहूँगा विषम डंक, अर्जुन को भी होगा कलंक,
सब लोग कहेंगे, डरकर ही, अर्जुन ने अद्भुत नीति गही।
चल चाल कर्ण को फोड़ लिया,
सम्बन्ध अनोखा जोड़ लिया।

'कोई न कहीं भी चूकेगा, सारा जग मुझपर थूकेगा,
तप, त्याग, शील, जप, योग, दान, मेरे होंगे मिट्टी-समान।
लोभी लालची कहाऊँगा,
किसको, क्या मुख दिखलाऊँगा।

'जो आज आप कह रहे आर्य, कुन्ती के मुख से कृपाचार्य,
सुन वही, हुए लज्जित होते, हम क्यों रण को सज्जित होते?
मिलता न कर्ण दुर्योधन को,
पाण्डव न कभी जाते वन को।

'लेकिन, नौका तट छोड़ चली, कुछ पता नहीं, किस ओर चली।
यह बीच नदी की धारा है, सूझता न कूल-किनारा है।
ले लील भले यह धार मुझे,
लौटना नहीं स्वीकार मुझे।

'धर्माधिराज का ज्येष्ठ बनूँ ? भारत में सबसे श्रेष्ठ बनूँ?
कुल की पोशाक पहन करके, सिर उठा चलूँ कुछ तन करके?
इस झूठ-मूठ में रस क्या है?
केशव! यह सुयश सुयश क्या है?

'सिर पर कुलीनता का टीका, भीतर जीवन का रस फीका,
अपना न नाम जो ले सकते, परिचय न तेज से दे सकते,
ऐसे भी कुछ नर होते हैं,
कुल को खाते औ' खोते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'विक्रमी पुरुष लेकिन, सिर पर, चलता न छत्र पुरखों का धर,
अपना बल-तेज जगाता है, सम्मान जगत् से पाता है।
सब उसे देख ललचाते हैं,
कर विविध यत्न अपनाते हैं।

'कुल-गोत्र नहीं साधन मेरा, पुरुषार्थ एक बस धन मेरा,
कुल ने तो मुझको फेंक दिया, मैंने हिम्मत से काम लिया।
अब वंश चकित भरमाया है,
खुद मुझे खोजने आया है।

'लेकिन, मैं लौट चलूँगा क्या ? अपने प्रण से विचलूँगा क्या ?
रण में कुरुपति का विजय-वरण, या पार्थ-हाथ कर्ण का मरण।
हे कृष्ण! यही मति मेरी है,
तीसरी नहीं गति मेरी है।

'मैत्री की बड़ी सुखद छाया, शीतल हो जाती है काया,
धिक्कार-योग्य होगा वह नर, जो पाकर भी ऐसा तरुवर,
हो अलग खड़ा कटवाता है,
खुद आप नहीं कट जाता है।

'जिस नर की बाँह गही मैंने, जिस तरु की छाँह गही मैंने,
उस पर न वार चलने दूँगा, कैसे कुठारं चलने दूँगा ?
जीते जी उसे बचाऊँगा,
या आप स्वयं कट जाऊँगा।

'मित्रता बड़ा अनमोल रतन, कब इसे तोल सकता है धन ?
धरती की तो है क्या बिसात ? आ जाय अगर बैकुण्ठ हाथ,
उसको भी न्योछावर कर दूँ,
कुरुपति के चरणों पर धर दूँ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'सिर लिये स्कन्ध पर चलता हूँ, उस दिन के लिए मचलता
यदि चले वज्र दुर्योधन पर, ले लूँ बढ़कर अपने ऊ
कटवा दूँ उसके लिए गला,
चाहिए मुझे क्या और भला?

'सम्राट् बनेंगे धर्मराज, या पायेगा कुरुराज ता
लड़ना भर मेरा काम रहा, दुर्योधन का संग्राम र
मुझको न कहीं कुछ पाना है,
केवल ऋण मात्र चुकाना है।

'कुरुराज्य चाहता मैं कब हूँ, साम्राज्य चाहता मैं कब
क्या नहीं आपने भी जाना ? मुझको न आज तक पहचा
जीवन का मूल्य समझता हूँ,
धन को मैं धूल समझता हूँ।

'धनराशि जोगना लक्ष्य नहीं, साम्राज्य भोगना लक्ष्य न
भुजबल से कर संसार-विजय, अगणित समृद्धियों का स
दे दिया मित्र दुर्योधन को,
तृष्णा छू भी न सकी मन को।

'वैभव-विलास की चाह नहीं, अपनी कोई परवाह न
बस, यही चाहता हूँ केवल, दान की देव-सरिता निर्म
करतल से झरती रहे सदा,
निर्धन को भरती रहे सदा!

'तुच्छ है, राज्य क्या है केशव? पाता क्या नर कर प्राप्त विभ
चिन्ता प्रभूत, अत्यल्प हास, कुछ चाकचिक्य, कुछ क्षण विल
पर, वह भी यहीं गँवाना है,
कुछ साथ नहीं ले जाना है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'मुझ-से मनुष्य जो होते हैं, कञ्चन का भार न ढोते हैं।
पाते हैं धन बिखराने को, लाते हैं रतन लुटाने को।
जग से न कभी कुछ लेते हैं,
दान ही हृदय का देते हैं।

'प्रासादों के कनकाभ शिखर, होते कबूतरों के ही घर,
महलों में गरुड़ न होता है, कञ्चन पर कभी न सोता है।
बसता वह कहीं पहाड़ों में,
शैलों की फटी दरारों में।

'होकर समृद्धि-सुख के अधीन, मानव होता नित तपःक्षीण,
सत्ता, किरीट, मणिमय आसन, करते मनुष्य का तेज-हरण।
नर विभव-हेतु ललचाता है,
पर वही मनुज को खाता है।

'चाँदनी, पुष्पछाया में पल, नर भले बने सुमधुर, कोमल,
पर, अमृत क्लेश का पिये बिना, आतप, अन्धड़ में जिये बिना,
वह पुरुष नहीं कहला सकता,
विघ्नों को नहीं हिला सकता।

'उड़ते जो झञ्झावातों में, पीते जो वारि प्रपातों में,
सारा आकाश अयन जिनका, विषधर भुजंग भोजन जिनका,
वे ही फणिबन्ध छुड़ाते हैं,
धरती का हृदय जुड़ाते हैं।

'मैं गरुड़, कृष्ण ! मैं पक्षिराज, सिर पर न चाहिए मुझे ताज,
दुर्योधन पर है विपद् घोर, सकता न किसी विधि उसे छोड़।
रणखेत पाटना है मुझको,
अहिपाश काटना है मुझको।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'संग्राम-सिन्धु लहराता है, सामने प्रलय घहराता है,
रह-रहकर भुजा फड़कती है, बिजली-सी नसें कड़कती हैं,
चाहता तुरत मैं कूद पड़ूँ,
जीतूँ कि समर में डूब मरूँ।

'अब देर नहीं कीजै केशव! अवसेर नहीं कीजै केशव!
धनु की डोरी तन जाने दें, संग्राम तुरत ठन जाने दें।
ताण्डवी तेज लहरायेगा,
संसार ज्योति कुछ पायेगा।

'पर, एक विनय है मधुसूदन! मेरी यह जन्म-कथा गोपन;
मत कभी युधिष्ठिर से कहिए, जैसे हो, इसे दबा रहिए।
वे इसे जान यदि पायेंगे,
सिंहासन को ठुकरायेंगे।

'साम्राज्य न कभी स्वयं लेंगे, सारी सम्पत्ति मुझे देंगे,
मैं भी न उसे रख पाऊँगा, दुर्योधन को दे जाऊँगा।
पाण्डव वञ्चित रह जायेंगे,
दुख से न छूट वे पायेंगे।

'अच्छा, अब चला, प्रमाण आर्य! हों सिद्ध समर के शीघ्र कार्य,
रण में ही अब दर्शन होगा, शर से चरण-स्पर्शन होगा।
जय हो, दिनेश नभ में विहरें,
भूतल में दिव्य प्रकाश भरें।'

'रथ से राधेय उतर आया, हरि के मन में विस्मय छाया,
बोले कि 'वीर! शत बार धन्य, तुझ-सा न मित्र कोई अनन्य।
तू कुरुपति का ही नहीं प्राण,
नरता का है भूषण महान्।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चतुर्थ सर्ग

'जीवन का अभियान दान-बल से अजस्र चलता है,
उतनी बढ़ती ज्योति, स्नेह जितना अनल्प जलता है।
और दान में रोकर या हँस कर हम जो देते हैं,
अहंकारवश उसे स्वत्व का त्याग मान लेते हैं।

यह न स्वत्व का त्याग, दान तो जीवन का झरना है,
रखना उसको रोक, मृत्यु के पहले ही मरना है।
किस पर करते कृपा वृक्ष, यदि अपना फल देते हैं?
गिरने से उसको सँभाल, क्यों रोक नहीं लेते हैं।

ऋतु के बाद फलों का रुकना डालों का सड़ना है,
मोह दिखाना देय वस्तु पर आत्मघात करना है।
देते तरु इसलिए कि रेशों में मत कीट समायें,
रहें डालियाँ स्वस्थ और फिर नये-नये फल आयें।

सरिता देती वारि कि पाकर उसे सुपूरित घन हो,
बरसे मेघ, भरे फिर सरिता, उदित नया जीवन हो।
आत्मदान के साथ जगज्जीवन का ऋजु नाता है,
जो देता जितना बदले में उतना ही पाता है।

दिखलाना कार्पण्य आप, अपने धोखा खाना है,
रखना दान अपूर्ण, रिक्ति निज का ही रह जाना है।
व्रत का अन्तिम मोल चुकाते हुए न जो रोते हैं,
पूर्ण-काम जीवन से एकाकार वही होते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो नर आत्मदान से अपना जीवन-घट भरता है,
वही मृत्यु के मुख में भी पड़कर न कभी मरता है।
जहाँ कहीं है ज्योति जगत् में, जहाँ कहीं उजियाला,
वहाँ खड़ा है कोई अन्तिम मोल चुकानेवाला।

व्रत का अन्तिम मोल राम ने दिया, त्याग सीता को,
जीवन की संगिनी, प्राण की मणि को, सुपुनीता को,
दिया अस्थि देकर दधीचि ने, शिवि ने अंग कतर कर,
हरिश्चन्द्र ने कफन माँगते हुए सत्य पर अड़ कर।

ईसा ने संसार-हेतु शूली पर प्राण गँवा कर,
अन्तिम मूल्य दिया गाँधी ने तीन गोलियाँ खाकर।
सुन अन्तिम ललकार मोल माँगते हुए जीवन की,
सरमद ने हँसकर उतार दी त्वचा समूचे तन की।

हँसकर लिया मरण ओठों पर, जीवन का व्रत पाला,
अमर हुआ सुकरात जगत् में, पीकर विष का प्याला।
मरकर भी मनसूर नियति की सह पाया न ठिठोली,
उत्तर में सौ बार चीख कर बोटी-बोटी बोली।

दान जगत् का प्रकृत धर्म है, मनुज व्यर्थ डरता है
एक रोज तो हमें स्वयं सब-कुछ देना पड़ता है।
बचते वही, समय पर जो सर्वस्व दान करते हैं
ऋतु का ज्ञान नहीं जिनको, वे देकर भी मरते हैं।

वीर कर्ण, विक्रमी, दान का अति अमोघ व्रतधारी,
पाल रहा था बहुत काल से एक पुण्य-प्रण भारी।
रवि-पूजन के समय सामने जो याचक आता था,
मुँहमाँगा वह दान कर्ण से अनायास पाता था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फहर रही थी मुक्त चतुर्दिक् यश की विमल पताका,
कर्ण नाम पड़ गया दान की अतुलनीय महिमा का।
श्रद्धा-सहित नमन करते सुन नाम देश के ज्ञानी,
अपना भाग्य समझ भजते थे उसे भाग्यहत प्राणी।

तब कहते हैं, एक बार हटकर प्रत्यक्ष समर से;
किया नियति ने वार कर्ण पर, छिपकर, पुण्य-विवर से।
व्रत का निकष दान था, अबकी चढ़ी निकष पर काया,
कठिन मूल्य माँगने सामने भाग्य देह धर आया।

एक दिवस जब छोड़ रहे थे दिनमणि मध्य गगन को,
कर्ण जाह्नवी-तीर खड़ा था मुद्रित किये नयन को।
कटि तक डूबा हुआ सलिल में किसी ध्यान में रत-सा,
अम्बुधि में आकटक निमज्जित कनक-खचित पर्वत-सा।

हँसती थीं रश्मियाँ रजत से भर कर वारि विमल को,
हो उठती थीं स्वयं स्वर्ण छू कवच और कुंडल को।
किरण-सुधा पी कमल मोद में भरकर दमक रहा था,
कदली के चिकने पातों पर पारद चमक रहा था।

विहग लता-वीरुध-वितान में तट पर चहक रहे थे,
धूप, दीप, कर्पूर, फूल, सब मिल कर महक रहे थे।
पूरी कर पूजा-उपासना ध्यान कर्ण ने खोला,
इतने में ऊपर तट पर खर-पात कहीं कुछ डोला।

कहा कर्ण ने, 'कौन उधर है ? बन्धु, सामने आओ,
मैं प्रस्तुत हो चुका, स्वस्थ हो, निज आदेश सुनाओ।
अपनी पीड़ा कहो, कर्ण सबका विनीत अनुचर है,
यह विपन्न का सखा तुम्हारी सेवा में तत्पर है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'माँगो, माँगो दान, अन्न या वसन, धाम या धन दूँ?
अपना छोटा राज्य या कि यह क्षणिक, क्षुद्र जीवन दूँ?
मेघ भले लौटे उदास हो किसी रोज सागर से,
याचक फिर सकते निराश पर, नहीं कर्ण के घर से।

'पर का दु:ख हरण करने में ही अपना सुख माना,
भाग्यहीन मैंने जीवन में और स्वाद क्या जाना!
आओ, उऋण बनूँ तुमको भी न्यास तुम्हारा देकर,
उपकृत करो मुझे, अपनी सञ्चित निधि मुझसे लेकर।

'अरे कौन है भिक्षु यहाँ पर और कौन दाता है!
अपना ही अधिकार मनुज नाना विधि से पाता है।
कर पसार कर जब भी तुम मुझसे कुछ ले लेते हो,
तृप्त भाव से हेर मुझे क्या चीज नहीं देते हो?

'दीनों का सन्तोष, भाग्यहीनों की गद्‌गद वाणी,
नयन कोर में भरा लबालब कृतज्ञता का पानी,
हो जाना फिर हरा युगों से मुरझाये अधरों का,
पाना आशीर्वचन, प्रेम, विश्वास अनेक नरों का।

'इससे बढ़कर और प्राप्ति क्या जिस पर गर्व करें हम?
पर को जीवन मिले अगर तो हँस कर क्यों न मरें हम?
मोल-तोल कुछ नहीं, माँग लो जो कुछ तुम्हें सुहाये,
मुँहमांगा ही दान सभी को हम हैं देते आये।'

'गिरा गहन सुन चकित और मन-ही-मन-कुछ भरमाया,
लता-ओट से एक विप्र सामने कर्ण के आया,
कहा कि 'जय हो, हमने भी है सुनी सुकीर्ति कहानी,
नहीं आज कोई त्रिलोक में कहीं आप-सा दानी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'नहीं फिराते एक बार जो कुछ मुख से कहते हैं,
प्रण-पालन के लिए आप बहु भाँति कष्ट सहते हैं।
आश्वासन से ही अभीत हो सुख विपन्न पाता है,
कर्ण-वचन सर्वत्र कार्यवाचक माना जाता है।

'लोग दिव्य शत-शत प्रमाण निष्ठा के बतलाते हैं,
शिवि-दधीचि-प्रह्लाद कोटि में आप गिने जाते हैं।
सबका है विश्वास, मृत्यु से आप न डर सकते हैं,
हँस कर प्रण के लिए प्राण न्योछावर कर सकते हैं।

'ऐसा है तो मनुज-लोक, निश्चय, आदर पायेगा।
स्वर्ग किसी दिन भीख माँगने मिट्टी पर आयेगा।
किन्तु भाग्य है बली, कौन, किससे, कितना पाता है,
यह लेखा नर के ललाट में ही देखा जाता है।

'क्षुद्र पात्र हो मग्न कूप में जितना जल लेता है,
उससे अधिक वारि सागर भी उसे नहीं देता है।
अतः, व्यर्थ है देख बड़ों को बड़ी वस्तु की आशा,
किस्मत भी चाहिए, नहीं केवल ऊँची अभिलाषा।'

कहा कर्ण ने, 'वृथा भाग्य से आप डरे जाते हैं,
जो है सम्मुख खड़ा, उसे पहचान नहीं पाते हैं।
विधि ने था क्या लिखा भाग्य में, खूब जानता हूँ मैं,
बाँहों को, पर, कहीं भाग्य से बली मानता हूँ मैं।

'महाराज, उद्यम से विधि का अंक उलट जाता है,
किस्मत का पाशा पौरुष से हार पलट जाता है।
और उच्च अभिलाषाएँ तो मनुज मात्र का बल हैं,
जगा-जगा कर हमें वही तो रखती नित चंचल हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'आगे जिसकी नजर नहीं, वह भला कहाँ जायेगा?
अधिक नहीं चाहता, पुरुष वह कितना धन पायेगा?
अच्छा, अब उपचार छोड़, बोलिये, आप क्या लेंगे,
सत्य मानिये, जो माँगेंगे आप, वही हम देंगे।

'मही डोलती और डोलता नभ में देव-निलय भी,
कभी-कभी डोलता समर में किंचित् वीर-हृदय भी।
डोले मूल अचल पर्वत का, या डोले ध्रुवतारा,
सब डोलें, पर नहीं डोल सकता है वचन हमारा।'

भली-भाँति कस कर दाता को, बोला नीच भिखारी,
'धन्य-धन्य, राधेय! दान के अति अमोघ व्रतधारी।
ऐसा है औदार्य, तभी तो कहता प्रति याचक है,
महाराज का वचन सदा, सर्वत्र क्रियावाचक है।

'मैं सब-कुछ पा गया प्राप्त कर वचन आपके मुख से,
अब तो मैं कुछ लिये बिना भी जा सकता हूँ सुख से।
क्योंकि माँगना है जो कुछ उसको कहते डरता हूँ,
और साथ ही, एक द्विधा का भी अनुभव करता हूँ।

'कहीं आप दे सके नहीं, जो कुछ मैं धन माँगूँगा,
मैं तो भला किसी विधि अपनी अभिलाषा त्यागूँगा,
किन्तु आपकी कीर्ति-चाँदनी फीकी हो जायेगी,
निष्कलंक विधु कहाँ दूसरा फिर वसुधा पायेगी?

'है सुकर्म, क्या संकट में डालना मनस्वी नर को?
प्रण से डिगा आपको दूँगा क्या उत्तर जग भर को?
सब कोसेंगे मुझे कि मैंने पुण्य मही का लूटा,
मेरे ही कारण अभंग प्रण महाराज का टूटा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'अतः, विदा दें मुझे, खुशी से मैं वापस जाता हूँ।'
बोल उठा राधेय, 'आपको मैं अद्भुत पाता हूँ।
सुर हैं, या कि यक्ष हैं अथवा हरि के मायाचर हैं,
समझ नहीं पाता कि आप नर हैं या योनि इतर हैं।

'भला कौन-सी वस्तु आप मुझ नश्वर से माँगेंगे,
जिसे नहीं पाकर, निराश हो, अभिलाषा त्यागेंगे?
गो, धरती, धन, धाम वस्तु जितनी चाहें दिलवा दूँ,
इच्छा हो तो शीश काट कर पद पर यहीं चढ़ा दूँ।

'या यदि साथ लिया चाहें जीवित, सदेह मुझको ही,
तो भी वचन तोड़कर हूँगा नहीं विप्र का द्रोही।
चलिये साथ चलूँगा मैं साकल्य आपका ढोते,
सारी आयु बिता दूँगा चरणों को धोते-धोते।

'वचन माँग कर नहीं माँगना दान बड़ा अद्भुत है,
कौन वस्तु है, जिसे न दे सकता राधा का सुत है?
विप्रदेव ! माँगिये छोड़ संकोच वस्तु मनचाही,
मरूँ अयश की मृत्यु, करूँ यदि एक बार भी 'नाहीं'।'

सहम गया सुन शपथ कर्ण की, हृदय विप्र का डोला,
नयन झुकाये हुए भिक्षु साहस समेट कर बोला,
'धन की लेकर भीख नहीं मैं घर भरने आया हूँ,
और नहीं नृप को अपना सेवक करने आया हूँ।

'यह कुछ मुझको नहीं चाहिए, देव धर्म को बल दें,
देना हो तो मुझे कृपा कर कवच और कुण्डल दें।'
'कवच और कुण्डल !' विद्युत छू गयी कर्ण के तन को;
पर, कुछ सोच रहस्य, कहा उसने गँभीर कर मन को।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'समझा, तो यह और न कोई, आप, स्वयं सुरपति हैं,
देने को आये प्रसन्न हो तप में नयी प्रगति हैं।
धन्य हमारा सुयश आपको खींच मही पर लाया,
स्वर्ग भीख माँगने आज, सच ही, मिट्टी पर आया।

'क्षमा कीजिये, इस रहस्य को तुरत न जान सका मैं,
छिप कर आये आप, नहीं इससे पहचान सका मैं।
दीन विप्र ही समझ कहा–धन, धाम, धरा लेने को,
था क्या मेरे पास, अन्यथा, सुरपति को देने को?

'केवल गन्ध जिन्हें प्रिय, उनको स्थूल मनुज क्या देगा?
और व्योमवासी मिट्टी से दान भला क्या लेगा?
फिर भी, देवराज भिक्षुक बनकर यदि हाथ पसारें,
जो भी हो, पर इस सुयोग को, हम क्यों अशुभ विचारें?

'अतः, आपने जो माँगा है, दान वही मैं दूँगा,
शिवि-दधीचि की पंक्ति छोड़कर जग में अयश न लूँगा।
पर, कहता हूँ, मुझे बना निस्त्राण छोड़ते हैं क्यों?
कवच और कुण्डल ले करके प्राण छोड़ते हैं क्यों?

'यह शायद, इसलिए कि अर्जुन जिये, आप सुख लूटें,
व्यर्थ न उसके शर अमोघ मुझ पर टकरा कर टूटें।
उधर करें बहु भाँति पार्थ की स्वयं कृष्ण रखवाली,
और इधर मैं लड़ूँ लिये यह देह कवच से खाली।

'तनिक सोचिये, वीरों का यह योग्य समर क्या होगा?
इस प्रकार से मुझे मार कर पार्थ अमर क्या होगा?
एक बाज का पंख तोड़ कर करना अभय अपर को,
सुर को शोभे भले, नीति यह नहीं शोभती नर को।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'यह तो निहत शरभ पर चढ़ आखेटक पद पाना है,
जहर पिला मृगपति को उस पर पौरुष दिखलाना है।
यह तो साफ समर से होकर भीत विमुख होना है,
जय निश्चित हो जाय, तभी रिपु के सम्मुख होना है।

'देवराज ! हम जिसे जीत सकते न बाहु के बल से,
क्या है उचित उसे मारें हम न्याय छोड़कर छल से?
हार-जीत क्या चीज? वीरता की पहचान समर है।
सच्चाई पर कभी हार कर भी न हारता नर है।

'और पार्थ यदि बिना लड़े ही जय के लिए विकल है,
तो कहता हूँ, इस जय का भी एक उपाय सरल है।
कहिये उसे, मोम की मेरी एक मूर्ति बनवाये,
और काट कर उसे, जगत् में कर्णजयी कहलाये।

'जीत सकेगा मुझे नहीं वह और किसी विधि रण में,
कर्ण-विजय की आश तड़प कर रह जायेगी मन में।
जीते जूझ समर वीरों ने सदा बाहु के बल से,
मुझे छोड़ रक्षित जनमा था कौन कवच-कुण्डल से?

'मैं ही था अपवाद, आज वह भी विभेद हरता हूँ,
कवच छोड़ अपना शरीर सबके समान करता हूँ।
अच्छा किया कि आप मुझे समतल पर लाने आये,
हर तनुत्र दैवीय; मनुज सामान्य बनाने आये।

'अब न कहेगा जगत, कर्ण को ईश्वरीय भी बल था,
जीता वह इसलिए कि उसके पास कवच-कुण्डल था।
महाराज ! किस्मत ने मेरी की न कौन अवहेला?
किस आपत्ति-गर्त में उसने मुझको नहीं धकेला?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'जनमा जानें कहाँ, पला, पद-दलित सूत के कुल में,
परिभव सहता रहा विफल प्रोत्साहन हित व्याकुल मैं।
द्रोणदेव से हो निराश वन में भृगुपति तक धाया,
बड़ी भक्ति की पर, बदले में शाप भयानक पाया।

'और दान, जिसके कारण ही हुआ ख्यात मैं जग में,
आया है बन विघ्न सामने आज विजय के मग में।
ब्रह्मा के हित उचित मुझे क्या इस प्रकार छलना था?
हवन डालते हुए यज्ञ में मुझको ही जलना था?

'सबको मिली स्नेह की छाया, नयी-नयी सुविधाएँ,
नियति भेजती रही सदा, पर, मेरे हित विपदाएँ।
मन-ही-मन सोचता रहा हूँ, यह रहस्य भी क्या है,
खोज खोज घेरती मुझी को क्यों बाधा-विपदा है?

'और कहें यदि, पूर्व जन्म के पापों का यह फल है,
तो फिर विधि ने दिया मुझे क्यों कवच और कुण्डल है?
समझ नहीं पड़ती विरञ्चि की बड़ी जटिल है माया,
सब-कुछ पाकर भी मैंने यह भाग्य-दोष क्यों पाया?

'जिससे मिलता नहीं सिद्ध फल मुझे किसी भी व्रत का,
उलटा हो जाता प्रभाव मुझपर आ धर्म सुगत का।
गंगा में ले जन्म, वारि गंगा का पी न सका मैं,
किये सदा सत्कर्म, छोड़ चिन्ता पर, जी न सका मैं।

'जानें क्या मेरी रचना में था उद्देश्य प्रकृति का,
मुझे बना आगार शूरता का, करुणा का, धृति का,
देवोपम गुण सभी दान कर, जाने, क्या करने को,
दिया भेज भू पर केवल बाधाओं से लड़ने को!

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'फिर कहता हूँ, नहीं व्यर्थ राधेय यहाँ आया है,
एक नया सन्देश विश्व के हित वह भी लाया है।
स्यात, उसे भी नया पाठ मनुजों को सिखलाना है,
जीवन-जय के लिए कहीं कुछ करतब दिखलाना है।

'वह करतब है यह कि शूर जो चाहे कर सकता है,
नियति-भाल पर पुरुष पाँव निज बल से धर सकता है।
वह करतब है यह कि शक्ति बसती न वंश या कुल में,
बसती है वह सदा वीर पुरुषों के वक्ष पृथुल में।

'वह करतब है यह कि विश्व ही चाहे रिपु हो जाये,
दगा धर्म दे और पुण्य चाहे ज्वाला बरसाये।
पर, मनुष्य तब भी न कभी सत्पथ से टल सकता है,
बल से अन्धड़ को धकेल वह आगे चल सकता है।

'वह करतब है यह कि युद्ध में मारो और मरो तुम,
पर, कुपन्थ में कभी जीत के लिए न पाँव धरो तुम।
वह करतब है यह कि सत्य-पथ पर चाहे कट जाओ,
विजय-तिलक के लिए करों में कालिख पर, न लगाओ।

'देवराज ! छल, छद्म, स्वार्थ, कुछ भी न साथ लाया हूँ,
मैं केवल आदर्श, एक उनका बनने आया हूँ।
जिन्हें नहीं अवलम्ब दूसरा, छोड़ बाहु के बल को,
धर्म छोड़ भजते न कभी जो किसी लोभ से छल को।

'मैं उनका आदर्श जिन्हें कुल का गौरव ताड़ेगा,
'नीचवंशजन्मा' कहकर जिनको जग धिक्कारेगा।
जो समाज की विषम वह्नि में चारों ओर जलेंगे,
पग-पग पर झेलते हुए बाधा निःसीम चलेंगे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'मैं उनका आदर्श, कहीं जो व्यथा न खोल सकेंगे,
पूछेगा जग ; किन्तु, पिता का नाम न बोल सकेंगे।
जिनका निखिल विश्व में कोई कहीं न अपना होगा,
मन में लिए उमंग जिन्हें चिर-काल कलपना होगा।

'मैं उनका आदर्श, किन्तु, जो तनिक न घबरायेंगे,
निज चरित्र-बल से समाज में पद विशिष्ट पायेंगे।
सिंहासन ही नहीं, स्वर्ग भी जिन्हें देख नत होगा,
धर्म हेतु धन-धाम लुटा देना जिनका व्रत होगा।

'श्रम से नहीं विमुख होंगे, जो दुख से नहीं डरेंगे,
सुख के लिए पाप से जो नर सन्धि न कभी करेंगे।
कर्ण-धर्म होगा धरती पर बलि से नहीं मुकरना,
जीना जिस अप्रतिम तेज से, उसी शान से मरना।

'भुज को छोड़ न मुझे सहारा किसी और सम्बल का,
बड़ा भरोसा था, लेकिन, इस कवच और कुण्डल का।
पर, उनसे भी आज दूर सम्बन्ध किये लेता हूँ,
देवराज ! लीजिये खुशी से महादान देता हूँ।

'यह लीजिये कर्ण का जीवन और जीत कुरुपति की,
कनक-रचित निःश्रेणि अनूपम निज सुत की उन्नति की।
हेतु पाण्डवों के भय का, परिणाम महाभारत का,
अन्तिम मूल्य किसी दानी जीवन के दारुण व्रत का।

'जीवन देकर जय खरीदना, जग में यही चलन है,
विजय दान करता न प्राण को रख कर कोई जन है।
मगर, प्राण रखकर प्रण अपना आज पालता हूँ मैं,
पूर्णाहुति के लिए विजय का हवन डालता हूँ मैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'देवराज ! जीवन में आगे और कीर्ति क्या लूँगा?
इससे बढ़कर दान अनूपम भला किसे, क्या दूँगा?
अब जाकर कहिये कि 'पुत्र ! मैं वृथा नहीं आया हूँ,
अर्जुन! तेरे लिए कर्ण से विजय माँग लाया हूँ।'

'एक विनय है और, आप लौटें जब अमर भुवन को,
दें दं यह सूचना सत्य के हित में, चतुरानन को।
'उद्वेलित जिसके निमित्त पृथ्वीतल का जन-जन है,
कुरुक्षेत्र में अभी शुरू भी हुआ नहीं वह रण है।

'दो वीरों ने किन्तु, लिया कर, आपस में निपटारा,
हुआ जयी राधेय और अर्जुन इस रण में हारा।'
यह कह, उठा कृपाण कर्ण ने त्वचा छील क्षण भर में,
कवच और कुण्डल उतार, धर दियां इन्द्र के कर में!

चकित, भीत चहचहा उठे कुंजों में विहग बिचारे,
दिशा सन्न रह गयी देख यह दृश्य भीति के मारे।
सह न सके आघात, सूर्य छिप गये सरक कर घन में,
'साधु, साधु !' की गिरा मन्द्र गूँजी गम्भीर गगन में।

अपना कृत्य विचार, कर्ण का करतब देख निराला,
देवराज का मुखमण्डल पड़ गया ग्लानि से काला।
क्लिन्न कवच को लिये किसी चिन्ता में पगे हुए-से।
ज्यों-के-त्यों रह गये इन्द्र जड़ता में ठगे हुए-से

'पाप हाथ से निकल मनुज के सिर पर जब छाता है,
तब सत्य ही, प्रदाह प्राण का सहा नहीं जाता है।
अहंकारवश इन्द्र सरल नर को छलने आये थे,
नहीं त्याग के महातेज-सम्मुख जलने आये थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किन्तु, विशिख जो लगा कर्ण की बलि का आन हृदय में,
बहुत काल तक इन्द्र मौन रह गये मग्न विस्मय में।
झुका शीश आखिर वे बोले, 'अब क्या बात कहूँ मैं?
करके ऐसा पाप मूक भी कैसे, किन्तु रहूँ मैं?

'पुत्र ! सत्य ही तूने पहचाना, मैं ही सुरपति हूँ,
पर, सुरत्व को भूल निवेदित करता तुझे प्रणति हूँ।
देख लिया, जो कुछ देखा था कभी न अब तक भू पर,
आज तुला पर भी नीचे है मही, स्वर्ग है ऊपर।

'क्या कह करूँ प्रबोध? जीभ काँपती, प्राण हिलते हैं,
माँगूँ क्षमादान, ऐसे तो शब्द नहीं मिलते हैं।
दे पावन पदधूलि कर्ण! दूसरी न मेरी गति है,
पहले भी थी भ्रमित, अभी भी फँसी भँवर में मति है।

'नहीं जानता था कि छद्म इतना संहारक होगा,
दान कवच-कुण्डल का—ऐसा हृदय-विदारक होगा।
मेरे मन का पाप मुझी पर बनकर धूम घिरेगा,
वज्र भेद कर तुझे, तुरत मुझ पर भी आन गिरेगा।

'तेरे महातेज के आगे मलिन हुआ जाता हूँ,
कर्ण ! सत्य ही, आज स्वयं को बड़ा क्षुद्र पाता हूँ।
आह ! खली थी कभी नहीं मुझको यों लघुता मेरी,
दानी ! कहीं दिव्य है मुझसे आज छाँह भी तेरी।

'तृण-सा विवश डूबता, उगता, बहता, उतराता हूँ,
शील-सिन्धु की गहराई का पता नहीं पाता हूँ।
घूम रहा मन-ही-मन लेकिन, मिलता नहीं किनारा,
हुई परीक्षा पूर्ण, सत्य ही नर जीता, सुर हारा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'हाँ, पड़ पुत्र-प्रेम में आया था छल ही करने को,
जान-बूझ कर कवच और कुण्डल तुझसे हरने को।
वह छल हुआ प्रसिद्ध, किसे, क्या मुख अब दिखलाऊँगा,
आया था बन विप्र, चोर बनकर वापस जाऊँगा।

'वन्दनीय तू कर्ण, देखकर तेज तिग्म अति तेरा,
काँप उठा था आते ही देवत्वपूर्ण मन मेरा।
किन्तु, अभी तो तुझे देख मन और डरा जाता है,
हृदय सिमटता हुआ आप-ही-आप मरा जाता है।

'दीख रहा तू मुझे ज्योति के उज्ज्वल शैल अचल-सा,
कोटि-कोटि जन्मों के सञ्चित महापुण्य के फल-सा।
त्रिभुवन में जिन अमित योगियों का प्रकाश जगता है,
उनके पुञ्जीभूत रूप-सा तू मुझको लगता है।

'खड़े दीखते जगन्नियन्ता पीछे मुझे गगन में,
बड़े प्रेम से लिये तुझे ज्यातिर्मय आलिंगन में।
दान, धर्म, अगणित व्रत-साधन, योग, यज्ञ, तप तेरे,
सब प्रकाश बन खड़े हुए हैं तुझे चतुर्दिक् घेरे।

'मही मग्न हो तुझे अंक में लेकर इठलाती है,
मस्तक सूँघ स्वत्व अपना यह कहकर जतलाती है,
'इसने मेरे अमित मलिन पुत्रों का दुख मेटा है,
सूर्यपुत्र यह नहीं, कर्ण मुझ दुखिया का बेटा है।

'तू दानी, मैं कुटिल प्रवञ्चक, तू पवित्र, मैं पापी,
तू देकर भी सुखी और मैं लेकर भी परितापी।
तू पहुँचा है जहाँ कर्ण, देवत्व न जा सकता है,
इस महान पद को कोई मानव ही पा सकता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'देख न सकता अधिक और मैं कर्ण, रूप यह तेरा,
काट रहा है मुझे जागकर पाप भयानक मेरा।
तेरे इस पावन स्वरूप में जितना ही पगता हूँ,
उतना ही मैं और अधिक बर्बर-समान लगता हूँ।

'अतः कर्ण ! कर कृपा यहाँ से तुरत मुझे जाने दे,
अपने इस दुर्द्धर्ष तेज से त्राण मुझे पाने दे।
मगर, विदा देने के पहले एक कृपा यह कर तू,
मुझ निष्ठुर से भी कोई ले माँग सोच कर वर तू।

कहा कर्ण ने, 'धन्य हुआ मैं आज सभी कुछ देकर,
देवराज ! अब क्या होगा वरदान नया कुछ लेकर?
बस, आशिष दीजिये, धर्म में मेरा भाव अचल हो,
वही छत्र हो, वही मुकुट हो, वही कवच-कुण्डल हो।

देवराज बोले कि 'कर्ण ! यदि धर्म तुझे छोड़ेगा,
निज रक्षा के लिए नया सम्बन्ध कहाँ जोड़ेगा?
और धर्म को तू छोड़ेगा भला पुत्र ! किस भय से,
अभी-अभी रक्खा जब इतना ऊपर उसे विजय से?

'धर्म नहीं, मैंने तुझसे जो वस्तु हरण कर ली है
छल से कर आघात तुझे जो निस्सहायता दी है
उसे दूर या कम करने की है मुझको अभिलाषा,
पर, स्वेच्छा से नहीं पूजने देगा तू यह आशा।

'तू माँगे कुछ नहीं, किन्तु मुझको अवश्य देना है
मन का कठिन बोझ थोड़ा-सा हल्का कर लेना है।
ले अमोघ यह अस्त्र, काल को भी यह खा सकता है
इसका कोई वार किसी पर विफल न जा सकता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'एक बार ही मगर, काम तू इससे ले पायेगा,
फिर यह तुरत लौट कर मेरे पास चला जायेगा।
अतः वत्स ! मत इसे चलाना कभी वृथा चञ्चल हो,
लेना काम तभी जब तुझको और न कोई बल हो।

'दानवीर ! जय हो, महिमा का गान सभी जन गायें,
देव और नर, दोनों ही, तेरा चरित्र अपनायें।'
दे अमोघ शर-दान सिधारे देवराज अम्बर को,
व्रत का अन्तिम मूल्य चुका कर गया कर्ण निज घर को।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चम सर्ग

'आ गया काल विकराल शान्ति के क्षय का,
निर्दिष्ट लग्न धरती पर खण्ड-प्रलय का।
हो चुकी पूर्ण योजना नियति की सारी,
कल ही होगा आरम्भ समर अति भारी।

कल जैसे ही पहली मरीचि फूटेगी,
रण में शर पर चढ़ महामृत्यु छूटेगी।
संहार मचेगा, तिमिर घोर छायेगा,
सारा समाज दृगवञ्चित हो जायेगा।

जन-जन स्वजनों के लिए कुटिल यम होगा,
परिजन, परिजन के हित कृतान्त-सम होगा।
कल से भाई, भाई के प्राण हरेंगे,
नर ही नर के शोणित में स्नान करेंगे।

सुध-बुध खो, बैठी हुई समर-चिन्तन में,
कुन्ती व्याकुल हो उठी सोच कुछ मन में।
'हे राम ! नहीं क्या यह संयोग हटेगा?
सचमुच ही क्या कुन्ती का हृदय फटेगा?

'एक ही गोद के लाल, कोख के भाई,
सत्य ही, लड़ेंगे हो, दो ओर लड़ाई?
सत्य ही, कर्ण अनुजों के प्राण हरेगा,
अथवा, अर्जुन के हाथों स्वयं मरेगा?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'दो में जिसका उर फटे, फटूँगी मैं ही,
जिसकी भी गरदन कटे, कटूँगी मैं ही,
पार्थ को कर्ण, या पार्थ कर्ण को मारे,
बरसेंगे किस पर मुझे छोड़ अंगारे?

चिन्ताकुल, उलझी हुई व्यथा में, मन से,
बाहर आयी कुन्ती, कढ़ विदुर-भवन से।
सामने तपन को देख, तनिक घबरा कर,
सितकेशी, सम्भ्रममयी चली सकुचा कर।

उड़ती वितर्क-धागे पर, चंग-सरीखी,
सुधियों की सहती चोट प्राण पर तीखी।
आशा-अभिलाषा-भरी, डरी, भरमायी,
कुन्ती ज्यों-त्यों जाह्नवी-तीर पर आयी।

दिनमणि पश्चिम की ओर क्षितिज के ऊपर,
थे घट उँड़ेलते खड़े कनक के भू पर।
लालिमा बहा अग-जग को नहलाते थे,
खुद भी लज्जा से लाल हुए जाते थे।

राधेय सान्ध्य-पूजन में ध्यान लगाये,
था खड़ा विमल जल में, युग बाहु उठाये।
तन में रवि का अप्रतिम तेज जगता था,
दीपित ललाट अपरार्क-सदृश लगता था।

मानो, युग-स्वर्णिम-शिखर-मूल में आकर,
हो बैठ गया सचमुच ही, सिमट विभाकर।
अथवा मस्तक पर अरुण देवता को ले,
हो खड़ा तीर पर गरुड़ पंख निज खोले।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

या दो अर्चियाँ विशाल पुनीत अनल की,
हों सजा रही आरती विभा-मण्डल की,
अथवा अगाध कञ्चन में कहीं नहा कर,
मैनाक-शैल हो खड़ा बाहु फैला कर।

सुत की शोभा को देख मोद में फूली,
कुन्ती क्षण-भर को व्यथा-वेदना भूली।
भर कर ममता-पय से निष्पलक नयन को,
वह खड़ी सींचती रही पुत्र के तन को।

आहट पाकर जब ध्यान कर्ण ने खोला,
कुन्ती को सम्मुख देख विनत हो बोला,
'पद पर अन्तर का भक्ति-भाव धरता हूँ,
राधा का सुत मैं, देवि ! नमन करता हूँ।

'हैं आप कौन ? किसलिए यहाँ आयी हैं?
मेरे निमित्त आदेश कौन लायी हैं?
यह कुरुक्षेत्र की भूमि, युद्ध का स्थल है,
अस्तमित हुआ चाहता विभामण्डल है।

'सूना, औघट यह घाट, महाभयकारी,
उस पर भी प्रवया आप अकेली नारी।
हैं कौन ? देवि !' कहिये, क्या काम करूँ मैं?
क्या भक्ति-भेंट चरणों पर आन धरूँ मैं?'

सुन गिरा गूढ़ कुन्ती का धीरज छूटा,
भीतर का क्लेश अपार अश्रु बन फूटा।
विगलित हो उसने कहा काँपते स्वर से,
'रे कर्ण ! बेध मत मुझे निदारुण शर से।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'राधा का सुत तू नहीं, तनय मेरा है,
जो धर्मराज का, वही वंश तेरा है।
तू नहीं सूत का पुत्र, राजवंशी है,
अर्जुन-समान कुरुकुल का ही अंशी है।

'जिस तरह तीन पुत्रों को मैंने पाया,
तू उसी तरह था प्रथम कुक्षि में आया।
पा तुझे धन्य थी हुई गोद यह मेरी,
मैं ही अभागिनी 'पृथा जननि हूँ तेरी।

'पर, मैं कुमारिका थी, जब तू आया था,
अनमोल लाल मैंने असमय पाया था।
अतएव हाय ! अपने दुधमुँहे तनय से,
भागना पड़ा मुझको समाज के भय से।

'बेटा, धरती पर बड़ी दीन है नारी,
अबला होती, सचमुच योषिता कुमारी।
है कठिन बन्द करना समाज के मुख को,
सिर उठा न पा सकती पतिता निज सुख को।

'उस पर भी बाल अबोध, काल बचपन का,
सूझा न शोध मुझको कुछ और पतन का।
मंजूषा में धर तुझे, वज्र कर मन को,
धारा में आयी छोड़ हृदय के धन को।

'संयोग, सूतपत्नी ने तुझको पाला,
उन दयामयी पर तनिक न मुझे कसाला।
ले चल, मैं उनके दोनों पाँव धरूँगी,
अग्रजा मान कर सादर अंक भरूँगी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'पर एक बात सुन, जो कहने आयी हूँ,
आदेश नहीं, प्रार्थना साथ लायी हूँ।
कल कुरुक्षेत्र में जो संग्राम छिड़ेगा,
क्षत्रिय-समाज पर कल जो प्रलय घिरेगा,

'उसमें न पाण्डवों के विरुद्ध हो लड़ तू,
मत उन्हें मार, या उनके हाथों मर तू।
मेरे ही सुत मेरे सुत को ही मारें,
हो क्रुद्ध परस्पर ही प्रतिशोध उतारें।

'यह विकट दृश्य मुझसे न सहा जायेगा,
अब और न मुझसे मूक रहा जायेगा।
जो छिपकर थी अब तक कुरेदती मन को,
बतला दूँगी वह व्यथा समग्र भुवन को।

'भागी थी तुझको छोड़ कभी जिस भय से,
फिर कभी न हेरा तुझको जिस संशय से।
उस जड़ समाज के सिर पर कदम धरूँगी,
डर चुकी बहुत, अब और न अधिक डरूँगी।

'बाजी तो मैं थी हार चुकी कब को ही,
लेकिन, विरञ्चि निकला कितना निर्मोही।
तुझ तक न आज तक दिया कभी भी आने,
यह गोपन जन्म-रहस्य तुझे बतलाने।

'पर, पुत्र ! सोच अन्यथा न तू कुछ मन में,
यह भी होता है कभी-कभी जीवन में।
अब दौड़ वत्स ! गोदी में वापस आ तू,
आ गया निकट विध्वंस, न देर लगा तू।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'जा भूल द्वेष के जहर, क्रोध के विष को,
रे कर्ण ! समर में अब मारेगा किस को?
पाँचों पाण्डव हैं अनुज, बड़ा तू ही है,
अग्रज बन रक्षा-हेतु खड़ा तू ही है।

'नेता बन, कर में सूत्र समर का ले तू,
अनुजों पर छत्र विशाल बाहु का दे तू।
संग्राम जीत, कर प्राप्त विजय अति भारी,
जयमुकुट पहन, फिर भोग सम्पदा सारी।

'यह नहीं किसी भी छल का आयोजन है,
रे पुत्र ! सत्य ही मैंने किया कथन है।
विश्वास न हो तो शपथ कौन मैं खाऊँ?
किसको प्रमाण के लिए यहाँ बुलवाऊँ?

'वह देख, पश्चिमी तट के पास गगन में,
देवता दीपते जो कनकाभ वसन में,
जिनके प्रताप की किरण अजय अद्भुत है,
तू उन्हीं अंशुधर का प्रकाशमय सुत है।'

रुक पृथा पोंछने लगी अश्रु अञ्चल से,
इतने में आयी गिरा गगन-मण्डल से,
'कुन्ती का सारा कथन सत्य कर जानो,
माँ की आज्ञा बेटा ! अवश्य तुम मानो।'

यह कह दिनेश चट उतर गये अम्बर से,
हो गये तिरोहित मिलकर किसी लहर से।
मानो, कुन्ती का भार भयानक पाकर,
वे चले गये दायित्व छोड़ घबराकर।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डूबते सूर्य को नमन निवेदित करके,
कुन्ती के पद की धूलि शीश पर धरके।
राधेय बोलने लगा बड़े ही दुख से,
'तुम मुझे पुत्र कहने आयी किस मुख से?

'क्या तुम्हें कर्ण से काम ? सूत है वह तो,
माता के तन का मल, अपूत है वह तो।
तुम बड़े वंश की बेटी, ठकुरानी हो,
अर्जुन की माता, कुरुकुल की रानी हो।

'मैं नाम-गोत्र से हीन, दीन, खोटा हूँ,
सारथीपुत्र हूँ, मनुज बड़ा छोटा हूँ।
ठकुरानी ! क्या लेकर तुम मुझे करोगी?
मल को पवित्र गोदी में कहाँ धरोगी?

'है कथा जन्म की ज्ञात, न बात बढ़ाओ,
मत छेड़-छेड़ मेरी पीड़ा उकसाओ,
हूँ खूब जानता, किसने मुझे जना था,
किसके प्राणों पर मैं दुर्भार बना था।

'सह विविध यातना मनुज जन्म पाता है,
धरती पर शिशु भूखा-प्यासा आता है।
माँ सहज-स्नेह से ही प्रेरित अकुला कर,
पय-पान कराती उर से उसे लगा कर।

'मुख चूम जन्म की क्लान्ति हरण करती है,
दृग से निहार अंग में अमृत भरती है।
पर, मुझे अंक में उठा न ले पायीं तुम,
पय का पहला आहार न दे पायीं तुम।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'उलटे, मुझको असहाय छोड़ कर जल में,
तुम लौट गयीं इज्जत के बड़े महल में।
मैं बचा अगर तो अपने आयुर्बल से,
रक्षा किसने की मेरी काल-कवल से?

'क्या कोर-कसर तुमने कोई भी की थी?
जीवन के बदले साफ मृत्यु ही दी थी।
पर, तुमने जब पत्थर का किया कलेजा,
असली माता के पास भाग्य ने भेजा।

'अब जब सब कुछ हो चुका, शेष दो क्षण हैं,
आखिरी दाँव पर लगा हुआ जीवन है,
तब प्यार बाँध करके अञ्चल के पट में,
आयी हो निधि खोजती हुई मरघट में।

'अपना खोया संसार न तुम पाओगी,
राधा माँ का अधिकार न तुम पाओगी।
छीनने स्वत्व उसका तो तुम आयी हो,
पर, कभी बात यह भी मन में लायी हो?

'उसको सेवा, तुमको सुकीर्ति प्यारी है,
तुम ठकुरानी हो, वह केवल नारी है।
तुमने तो तन से मुझे काढ़ कर फेंका,
उसने अनाथ को हृदय लगा कर सेंका।

'उमड़ी न स्नेह की उज्ज्वल धार हृदय से,
तुम सूख गयीं मुझको पाते ही भय से।
पर, राधा ने जिस दिन मुझको पाया था,
कहते हैं, उसको दूध उतर आया था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'तुमने जनकर भी नहीं पुत्र कर जाना,
उसने पाकर भी मुझे तनय निज माना।
अब तुम्हीं कहो, कैसे आत्मा को मारूँ?
माता कह उसके बदले तुम्हें पुकारूँ?

'है वृथा यत्न हे देवि ! मुझे पाने का,
मैं नहीं वंश में फिर वापस जाने का।
दी बिता आयु सारी कुलहीन कहा कर,
क्या पाऊँगा अब उसे आज अपना कर?

'यद्यपि जीवन की कथा कलंकमयी है,
मेरे समीप लेकिन, वह नहीं नयी है।
जो कुछ तुमने है कहा बड़े ही दुख से,
सुन उसे चुका हूँ मैं केशव के मुख से।

'जानें, सहसा तुम सबने क्या पाया है,
जो मुझ पर इतना प्रेम उमड़ आया है।
अब तक न स्नेह से कभी किसी ने हेरा,
सौभाग्य किन्तु, जग पड़ा अचानक मेरा।

'मैं खूब समझता हूँ कि नीति यह क्या है,
असमय में जन्मी हुई प्रीति यह क्या है।
जोड़ने नहीं बिछुड़े-वियुक्त कुलजन से,
फोड़ने मुझे आयी हो दुर्योधन से।

'सिर पर आकर जब हुआ उपस्थित रण है,
हिल उठा सोच परिणाम तुम्हारा मन है।
अंक में न तुम मुझको भरने आयी हो,
कुरुपति को कुछ दुर्बल करने आयी हो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'अन्यथा स्नेह की वेगमयी यह धारा,
तट को मरोड़, झकझोर, तोड़ कर कारा,
भुज बढ़ा खींचने मुझे न क्यों आयी थी?
पहले क्यों यह वरदान नहीं लायी थी?

'केशव पर चिन्ता डाल, अभय हो रहना,
इस पार्थ भाग्यशाली का भी क्या कहना !
ले गये माँग कर, जनक कवच-कुण्डल को,
जननी कुण्ठित करने आयीं रिपु-बल को।

'लेकिन, यह होगा नहीं देवि ! तुम जाओ,
जैसे भी हो, सुत का सौभाग्य मनाओ।
दें छोड़ भले ही कभी कृष्ण अर्जुन को,
मैं नहीं छोड़नेवाला दुर्योधन को।

'कुरुपति का मेरे रोम-रोम पर ऋण है,
आसान न होना उससे कभी उऋण है।
छल किया अगर, तो क्या जग में यश लूँगा।
प्राण ही नहीं, तो उसे और क्या दूँगा?

'हो चुका धर्म के ऊपर न्योछावर हूँ,
मैं चढ़ा हुआ नैवेद्य देवता पर हूँ।
अर्पित प्रसून के लिए न यों ललचाओ,
पूजा की वेदी पर मत हाथ बढ़ाओ।'

राधेय मौन हो रहा व्यथा निज कह के,
आँखों से झरने लगे अश्रु बह-बह के।
कुन्ती के मुख में वृथा जीभ हिलती थी,
कहने को कोई बात नहीं मिलती थी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अम्बर पर मोती-गुँथे चिकुर फैला कर,
अञ्जन उँड़ेल सारे जग को नहला कर।
साड़ी में टाँके हुए अनन्त सितारे,
थी घूम रही तिमिराञ्चल निशा पसारे।

थी दिशा स्तब्ध, नीरव समस्त अग-जग था,
कुञ्जों में अब बोलता न कोई खग था,
झिल्ली अपना स्वर कभी-कभी भरती थी,
जल में जब-जब मछली छप-छप करती थी।

इस सन्नाटे में दो जन सरित-किनारे,
थे खड़े शिलावत् मूक, भाग्य के मारे।
था सिसक रहा राधेय सोच यह मन में,
क्यों उबल पड़ा असमय विष कुटिल वचन में?

क्या कहे और, यह सोच नहीं पाती थी,
कुन्ती कुत्सा से दीन मरी जाती थी।
आखिर, समेट निज मन को कहा पृथा ने,
'आयी न वेदी पर का मैं फूल उठाने।

'पर के प्रसून को नहीं, नहीं पर-धन को,
थी खोज रही मैं तो अपने ही तन को,
पर, समझ गयी, वह मुझको नहीं मिलेगा,
बिछुड़ी डाली पर कुसुम न आन खिलेगा।

'तब जाती हूँ क्या और सकूँगी कर मैं?
दूँगी आगे क्यां भला और उत्तर मैं?
जो किया दोष जीवन भर दारुण रहकर,
मेटूँगी क्षण में उसे बात क्या कहकर?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'अभिलाष लिये तो बहुत बड़ी आयी थी,
पर, आस नहीं अपने बल की लायी थी।
था एक भरोसा यही कि तू दानी है,
अपनी अमोघ करुणा का अभिमानी है।

'थी विदित वत्स ! तेरी यह कीर्ति निराली,
लौटता न कोई कभी द्वार से खाली।
पर मैं अभागिनी ही अञ्चल फैलाकर,
जा रही रिक्त बेटे से भीख न पाकर।

'फिर भी तू जीता रहे, न अपयश जाने,
संसार किसी दिन तुझे पुत्र ! पहचाने।
अब आ, क्षण भर मैं तुझे अंक में भर लूँ,
आखिरी बार तेरा आलिंगन कर लूँ।'

माँ ने बढ़कर जैसे ही कण्ठ लगाया,
हो उठी कण्टकित पुलक कर्ण की काया।
सञ्जीवन-सी छू गयी चीज कुछ तन में,
बह चला स्निग्ध प्रस्त्रवण कहीं से मन में।

पहली वर्षा में मही भींगती जैसे,
भींगता रहा कुछ काल कर्ण भी वैसे।
फिर कण्ठ छोड़ बोला चरणों पर आकर,
'मैं धन्य हुआ बिछुड़ी गोदी को पाकर।

'पर, हाय, स्वत्व मेरा न समय पर लायीं,
माता, सचमुच, तुम बड़ी देर कर आयीं।
अतएव, न्यास अञ्चल का ले न सकूँगा,
पर, तुम्हें रिक्त जाने भी दे न सकूँगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'की पूर्ण सभी की, सभी तरह अभिलाषा,
जाने दूँ कैसे लेकर तुम्हें निराशा?
लेकिन, पड़ता हूँ पाँव, जननि ! हठ त्यागो,
बन कर कठोर मुझसे मुझको मत माँगो।

'केवल निमित्त संगर का दुर्योधन है,
सच पूछो तो यह कर्ण-पार्थ का रण है।
छीनो सुयोग मत, मुझे अंक में लेकर,
यश, मुकुट, मान, कुल, जाति, प्रतिष्ठा देकर।

'अर्जुन से लड़ना छोड़ कीर्ति क्या लूँगा?
क्या स्वयं आप अपने को उत्तर दूँगा?
मेरा चरित्र फिर कौन समझ पायेगा?
सारा जीवन ही उलट-पलट जायेगा।

'तुम दान-दान रट रहीं, किन्तु क्या माता,
पुत्र ही रहेगा सदा जगत् में दाता?
दुनिया तो उससे सदा सभी कुछ लेगी,
पर, क्या माता भी उसे नहीं कुछ देगी?

'मैं एक कर्ण अतएव, माँग लेता हूँ,
बदले में तुमको चार कर्ण देता हूँ।
छोड़ूँगा मैं तो कभी नहीं अर्जुन को,
तोड़ूँगा कैसे स्वयं पुरातन प्रण को?

'पर, अन्य पाण्डवों पर मैं कृपा करूँगा,
पाकर भी उनका जीवन नहीं हरूँगा।
अब जाओ हर्षित-हृदय सोच यह मन में,
पालूँगा जो कुछ कहा, उसे मैं रण में।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुन्ती बोली, 'रे हठी, दिया क्या तू ने?
निज को लेकर ले नहीं लिया क्या तू ने?
बनने आयी थी छह पुत्रों की माता,
रह गया वाम का, पर, वाम ही विधाता।

'पाकर न एक को, और एक को खोकर,
मैं चली चार पुत्रों की माता होकर।'
कह उठा कर्ण, 'छह और चार को भूलो,
माता, यह निश्चय मान मोद में फूलो।

'जीते जो भी यह समर झेल दुख भारी,
लेकिन होगी माँ ! अन्तिम विजय तुम्हारी।
रण में कट-मर कर जो भी हानि सहेंगे,
पाँच के पाँच ही पाण्डव किन्तु रहेंगे।

'कुरुपति न जीत कर निकला अगर समर से,
या मिली वीरगति मुझे पार्थ के कर से,
तुम इसी तरह गोदी की धनी रहोगी,
पुत्रिणी पाँच पुत्रों की बनी रहोगी।

'पर, कहीं काल का कोप पार्थ पर बीता,
वह मरा और दुर्योधन ने रण जीता,
मैं एक खेल फिर जग को दिखलाऊँगा,
जय छोड़ तुम्हारे पास चला आऊँगा।

'जग में जो भी निर्दलित, प्रताड़ित जन हैं,
जो भी निहीन हैं, निन्दित हैं निर्धन हैं,
यह कर्ण उन्हीं का सखा, बन्धु सहचर है,
विधि के विरुद्ध ही उसका रहा समर है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'सच है कि पाण्डवों को न राज्य का सुख है,
पर, केशव जिनके साथ, उन्हें क्या दुख है?
उनसे बढ़कर मैं क्या उपकार करूँगा?
है कौन त्रास, केवल मैं जिसे हरूँगा?

'हाँ, अगर पाण्डवों की न चली इस रण में,
वे हुए हतप्रभ किसी तरह जीवन में,
राधेय न कुरुपति का सह-जेता होगा,
वह पुनः निःस्व दलितों का नेता होगा।

'है अभी उदय का लग्न, दृश्य सुन्दर है,
सब ओर पाण्डु-पुत्रों की कीर्ति प्रखर है।
अनुकूल ज्योति की घड़ी न मेरी होगी,
मैं आऊँगा जब रात अँधेरी होगी।

'यश, मान, प्रतिष्ठा, मुकुट नहीं लेने को,
आऊँगा कुल को अभय दान देने को।
परिभव, प्रदाह, भ्रम, भय, हरने आऊँगा,
दुख में अनुजों को भुज भरने आऊँगा।

'भीषण विपत्ति में उन्हें जननि ! अपनाकर,
बाँटने दुःख आऊँगा हृदय लगाकर।
तन में नवीन आभा भरने आऊँगा,
किस्मत को फिर ताजा करने आऊँगा।

'पर नहीं, कृष्ण के कर की छाँह जहाँ है,
रक्षिका स्वयं अच्युत की बाँह जहाँ है,
उस भाग्यवान का भाग्य क्षार क्यों होगा?
सामने किसी दिन अन्धकार क्यों होगा?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'मैं देख रहा हूँ कुरुक्षेत्र के रण को,
नाचते हुए, मनुजों पर, महामरण को।
शोणित से सारी मही क्लिन्न लथपथ है,
जा रहा किन्तु, निर्बाध पार्थ का रथ है।

'है काट रहे हरि आप तिमिर की कारा,
अर्जुन के हित बह रही उलट कर धारा।
शप पाश व्यर्थ रिपु का दल फैलाता है,
वह जाल तोड़ हर बार निकल जाता है।

'मैं देख रहा हूँ जननि ! कि कल क्या होगा।
इस महासमर का अन्तिम फल क्या होगा।
लेकिन, तब भी मन तनिक न घबराता है,
उत्साह और दुगना बढ़ता जाता है।

बज चुका काल का पटह, भयानक क्षण है,
दे रहा निमन्त्रण सबको महामरण है।
छाती के पूरे पुरुष प्रलय झेलेंगे,
झञ्झा की उलझी लटें खींच खेलेंगे।

'कुछ भी न बचेगा शेष अन्त में जाकर,
विजयी होगा सन्तुष्ट तत्व क्या पाकर,
कौरव विलीन जिस पथ पर हो जायेंगे,
पाण्डव क्या उससे भिन्न राह पायेंगे?

'है एक पन्थ कोई जीते या हारे,
खुद मरे, या कि, बढ़कर दुश्मन को मारे।
एक ही देश दोनों को जाना होगा,
बचने का कोई नहीं बहाना होगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'निस्सार द्रोह की क्रिया, व्यर्थ यह रण है,
खोखला हमारा और पार्थ का प्रण है,
फिर भी जानें किसलिए न हम रुकते हैं,
चाहता जिधर को काल उधर झुकते हैं।

'लेकिन, चिन्ता यह वृथा, बात जाने दो,
जैसा भी हो कल का प्रभात आने दो।
दीखती किसी भी तरफ न उंजियाली है,
सत्य ही, आज की रात बड़ी काली है।

'चन्द्रमा-सूर्य तम में जब छिप जाते हैं,
किरणों के अन्वेषी जब अकुलाते हैं,
तब धूमकेतु, बस, इसी तरह आता है,
रोशनी जरा मरघट में फैलाता है।'

हो रहा मौन राधेय चरण को छूकर,
दो बिन्दु अश्रु के गिरे दृगों से चूकर।
बेटे का मस्तक सूँघ, बड़े ही दुख से,
कुन्ती लौटी कुछ कहे बिना ही मुख से।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षष्ठ सर्ग *

'गिरि का उदग्र गौरवाधार, गिर जाय शृंग ज्यों महाकार,
अथवा सूना कर आसमान, ज्यों गिरे टूट रवि भासमान।
कौरव-दल का कर तेजहरण,
त्यों गिरे भीष्म आलोकवरण।

कुरुकुल का दीपित ताज गिरा, थक कर बूढ़ा जब बाज गिरा,
भूलुंठित पितामह को विलोक, छा गया समर में महाशोक।
कुरुपति ही धैर्य न खोता था,
अर्जुन का मन भी रोता था।

रो-धो कर तेज नया दमका, दूसरा सूर्य सिर पर चमका,
कौरवी तेज दुर्जेय उठा, रण करने को राधेय उठा।
सबके रक्षक गुरु आर्य हुए,
सेना-नायक आचार्य हुए।

राधेय, किन्तु जिनके कारण, था अब तक किये मौन धारण,
उनका शुभ आशिष पाने को, अपना सद्धर्म निभाने को,
वह शर-शय्या की ओर चला,
पग-पग हो विनय-विभोर चला।

---

* भीष्म ने कर्ण को 'अर्धरथी' कह दिया था। इस अपमान के विरोध में कर्ण तब तक युद्ध में नहीं गया, जब तक भीष्म लड़ते रहे। दस दिनों के युद्ध के बाद जब भीष्म गिर गये, तब द्रोणाचार्य के सेनापतित्व में कर्ण का युद्ध प्रारम्भ हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छू भीष्मदेव के चरण युगल, बोला वाणी राधेय सरल,
'हे तात ! आपका प्रोत्साहन, पा सका नहीं जो लांछित जन,
यह वही सामने आया है,
उपहार अश्रु का लाया है।

'आज्ञा हो तो अब धनुष धरूँ, रण में चलकर कुछ काम करूँ,
देखूँ है कौन प्रलय उतरा, जिससे डगमग हो रही धरा।
कुरुपति को विजय दिलाऊँ मैं,
या स्वयं वीरगति पाऊँ मैं।

'अनुचर के दोष क्षमा करिये, मस्तक पर वरद पाणि धरिये,
आखिरी मिलन की वेला है, मन लगता बड़ा अकेला है।
मद-मोह त्यागने आया हूँ,
पद-धूलि माँगने आया हूँ।

भीष्म ने खोल निज सजल नयन, देखें कर्ण के आर्द्र लोचन,
बढ़ खींच पास में लाकर के, छाती से उसे लगा करके,
बोले 'क्या तत्व विशेष बचा।
बेटा, आँसू ही शेष बचा?

'मैं रहा रोकता ही क्षण-क्षण, पर हाय, हठी यह दुर्योधन
अंकुश विवेक का सह न सका, मेरे कहने में रह न सका
क्रोधान्ध, भ्रान्त, मद में विभोर,
ले ही आया संग्राम घोर।

'अब कहो, आज क्या होता है? किसका समाज यह रोता है?
किसका गौरव, किसका सिंगार, जल रहा पंक्ति के आर-पार?
किसका वन-बाग उजड़ता है?
यह कौन मारता-मरता है?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'फूटता द्रोह-दव का पावक, हो जाता सकल समाज नरक,
सबका वैभव, सबका सुहाग, जाती डकार यह कुटिल आग।
जब बन्धु विरोधी होते हैं।
सारे कुलवासी रोते हैं

'इसलिए, पुत्र! अब भी रुककर, मन में सोचो, यह महासमर,
किस ओर तुम्हें ले जायेगा? फल अलभ कौन दे पायेगा?
मानवता ही मिट जायेगी?
फिर विजय सिद्धि क्या लायेगी?

'ओ मेरे प्रतिद्वन्द्वी मानी ! निश्छल, पवित्र, गुणमय, ज्ञानी,
मेरे मुख से सुन परुष वचन, तुम वृथा मलिन करते थे मन।
मैं नहीं निरा अवशंसी था,
मन-ही-मन बड़ा प्रशंसी था।

सो भी इसलिए कि दुर्योधन, पा सदा तुम्हीं से आश्वासन,
मुझको न मानकर चलता था, पग-पग पर रूठ मचलता था।
अन्यथा पुत्र ! तुमसे बढ़कर,
मैं किसे मानता वीर प्रवर?

'पार्थोपम रथी, धनुर्धारी, केशव-समान रणभट भारी,
धर्मज्ञ, धीर, पावन-चरित्र, दीनों-दलितों के विहित मित्र,
अर्जुन को मिले कृष्ण जैसे,
तुम मिले कौरवों को वैसे।

'पर हाय, वीरता का सम्बल, रह जायेगा धनु ही केवल?
या शान्ति-हेतु शीतल, शुचि श्रम भी कभी करेंगे वीर परम?
ज्वाला भी कभी बुझायेंगे?
या लड़कर ही मर जायेंगे?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'चल सके सुयोधन पर यदि वश, बेटा ! लो जग में नया सुयश,
लड़ने से बढ़ यह काम करो, आज ही बन्द संग्राम करो।
यदि इसे रोक तुम पाओगे,
जग के त्राता कहलाओगे।

'जा कहो वीर दुर्योधन से, कर दूर द्वेष-विष को मन से,
वह मिले पाण्डवों से जाकर, मरने दे मुझे शान्ति पाकर।
मेरा अन्तिम बलिदान रहे,
सुख से सारी सन्तान रहे।'

'हे पुरुष सिंह !' कर्ण ने कहा, 'अब और पन्थ क्या शेष रहा?
संकटापन्न जीवन-समान, है बीच सिन्धु में महायान;
इस पार शान्ति उस पार विजय,
अब क्या हो भला नया निश्चय।

'जय मिले बिना विश्राम नहीं, इस समय सन्धि का नाम नहीं,
आशिष दीजिए, विजय कर रण, फिर देख सकूँ ये भव्य चरण।
जलयान सिन्धु से तार सकूँ;
सबको मैं पार उतार सकूँ।

'कल तक था पथ शान्ति का सुगम, पर हुआ आज वह अति दुर्गम,
अब उसे देख ललचाना क्या? पीछे को पाँव हटाना क्या।
जय को कर लक्ष्य चलेंगे हम,
अरि-दल का गर्व दलेंगे हम।

'हे महाभाग, कुछ दिन जीकर, देखिये और यह महासमर,
मुझको भी प्रलय मचाना है, कुछ खेल नया दिखलाना है,
इस दम तो मुख मोड़िये नहीं;
मेरी हिम्मत तोड़िये नहीं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'करने दीजिए स्वव्रत पालन, अपने महान् प्रतिभट से रण,
अर्जुन का शीश उड़ाना है, कुरुपति का हृदय जुड़ाना है,
करने को पिता ! अमर मुझको,
है बुला रहा संगर मुझको।

गांगेय निराशा में भर कर बोले–'तब हे नरवीर, प्रवर?
जो भला लगे वह काम करो, जाओ, रण में लड़ नाम करो?
भगवान् शमित विष तूर्ण करें;
अपनी इच्छाएँ पूर्ण करें।'

भीष्म का चरण-वन्दन करके
ऊपर सूर्य को नमन करके
देवता वज्र-धनुधारी-सा,
केशरी अभय मगचारी-सा,

राधेय समर की ओर, चला,
करता गर्जन घनघोर चला।

पाकर प्रसन्न आलोक नया, कौरव-सेना का शोक गया,
आशा की नवल तरंग उठी, जन-जन में नयी उमंग उठी,
मानो, बाणों का छोड़ शयन,
आ गये स्वयं गंगानन्दन।

सेना समग्र हुंकार उठी, 'जय-जय राधेय !' पुकार उठी,
उल्लास मुक्त हो छहर उठा, रण-जलधि घोष में घहर उठा,
बज उठी समर-भेरी भीषण,
हो गया शुरू संग्राम गहन।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सागर-सा गर्जित, क्षुभित घोर, विकराल दण्डधर-सा कठोर,
अरिदल पर कुपित कर्ण टूटा, धनु पर चढ़ महामरण छूटा।
ऐसी पहली ही आग चली,
पाण्डव की सेना भाग चली।

झञ्झा की घोर झकोर चली, डालों को तोड़-मरोड़ चली,
पेड़ों की जड़ टूटने लगी, हिम्मत सबकी छूटने लगी,
ऐसा प्रचण्ड तूफान उठा,
पर्वत का भी हिल प्राण उठा।

प्लावन का पा दुर्जय प्रहार, जिस तरह काँपती है कगार,
या चक्रवात में यथा कीर्ण, उड़ने लगते पत्ते विशीर्ण,
त्यों उठा काँप थर-थर अरिदल,
मच गयी बड़ी भीषण हलचल।

सब रथी व्यग्र बिलखाते थे, कोलाहल रोक न पाते थे,
सेना को यों बेहाल देख, सामने उपस्थित काल देख।
गरजे अधीर हो मधुसूदन,
बोले पार्थ से निगूढ़ वचन।

'दे अचिर सैन्य को अभयदान, अर्जुन ! अर्जुन ! हो सावधान,
तू नहीं जानता है यह क्या, करता न शत्रु पर कर्ण दया?
दाहक प्रचण्ड इसका बल है,
यह मनुज नहीं कालानल है।

'बड़वानल, यम या कालपवन, करते जब कभी कोप भीषण,
सारा सर्वस्व न लेते हैं, उच्छिष्ट छोड़ कुछ देते हैं।
पर, इसे क्रोध जब आता है;
कुछ भी न शेष रह पाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'यह महामत्त मानव-कुंजर, कैसे अशंक हो रहा विचर,
कर को जिस ओर बढ़ाता है, पथ उधर स्वयं बन जाता है।
तू नहीं शरासन तानेगा,
अंकुश किसका यह मानेगा?'

'अर्जुन ! विलम्ब पातक होगा, शैथिल्य प्राण-घातक होगा,
उठ जाग वीर ! मूढ़ता छोड़, धर धनुष-बाण अपना कठोर।
तू नहीं जोश में आयेगा,
आज ही समर चुक जायेगा।'

केशव का सिंह दहाड़ उठा, मानो चिग्घार पहाड़ उठा।
बाणों की फिर लग गयी झड़ी, भागती फौज हो गयी खड़ी।
जूझने लगे कौन्तेय-कर्ण,
ज्यों लड़ें परस्पर दो सुपर्ण।

एक ही वृन्त के दो कुड्मल, एक ही कुक्षि के दो कुमार,
एक ही वंश के दो भूषण, विभ्राट, वीर, पर्वताकार।
बेधने परस्पर लगे सहज-सोदर शरीर में प्रखर बाण,
दोनों की किंशुक देह हुई, दोनों के पावक हुए प्राण।

अन्धड़ बन कर उन्माद उठा, दोनों दिशि जयजयकार हुई।
दोनों पक्षों के वीरों पर, मानो भैरवी सवार हुई।
कट-कट कर गिरने लगे क्षिप्र, रुण्डों से मुण्ड अलग होकर,
बह चली मनुज के शोणित की धारा पशुओं के पग धोकर।

लेकिन, था कौन, हृदय जिसका, कुछ भी यह देख दहलता था?
था कौन नरों की लाशों पर, जो नहीं पाँव धर चलता था?
है कथा, द्रोण की छाया में यों पाँच दिनों तक युद्ध चला,
क्या कहें, धर्म पर कौन रहा, या उसके कौन विरुद्ध चला?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

था किया भीष्म पर पाण्डव ने, जैसे छल-छद्मों से प्रहार,
कुछ उसी तरह निष्ठुरता से हत हुआ वीर अर्जुन-कुमार!
फिर भी, भावुक कुरुवृद्ध भीष्म, थे युग पक्षों के लिए शरण,
कहते हैं, होकर विकल, मृत्यु का किया उन्होंने स्वयं वरण!

अर्जुन-कुमार की कथा, किन्तु अब तक भी हृदय हिलाती है,
सभ्यता नाम लेकर उसका अब भी रोती पछताती है।
पर हाय, युद्ध अन्तक-स्वरूप, अन्तक-सा ही दारुण कठोर,
देखता नहीं ज्यायान्-युवा देखता नहीं बालक-किशोर।

सुत के बध की सुन कथा पार्थ का, दहक उठा शोकार्त्त हृदय,
फिर किया क्रुद्ध होकर उसने, तब महा लोम-हर्षक निश्चय,
'कल अस्तकाल के पूर्व जयद्रथ को न मार यदि पाऊँ मैं,
सौगन्ध धर्म की मुझे, आग में स्वयं कूद जल जाऊँ मैं।'

तब कहते हैं अर्जुन के हित, हो गया प्रकृति-क्रम विपर्यस्त,
माया की सहसा शाम हुई, असमय दिनेश हो गये अस्त।
ज्यों-त्यों करके इस भाँति वीर अर्जुन का वह प्रण पूर्ण हुआ,
सिर कटा जयद्रथ का, मस्तक निर्दोष पिता का चूर्ण हुआ।

हाँ, यह भी हुआ कि सात्यकि से, जब निपट रहा था भूरिश्रवा,
पार्थ ने काट ली अनाहूत, शर से उसकी दाहिनी भुजा।
औ' भूरिश्रवा, अनशन करके, जब बैठ गया लेकर मुनि-व्रत,
सात्यकि ने मस्तक काट लिया, जब था वह निश्चित योग-निरत।

है वृथा धर्म का किसी समय, करना विग्रह के साथ ग्रथन,
करुणा से कढ़ता धर्म विमल, है मलिन पुत्र हिंसा का रण।
जीवन के परम ध्येय-सुख-को सारा समाज अपनाता है
देखना यही है, कौन वहाँ तक किस प्रकार से जाता है?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है धर्म पहुँचना नहीं; धर्म तो जीवन भर चलने में है।
फैला कर पथ पर स्निग्ध ज्योति दीपक समान जलने में है।
यदि कहें विजय, तो विजय प्राप्त हो जाती परतापी को भी,
सत्य ही, पुत्र, दारा, धन, जन; मिल जाते हैं पापी को भी।

इसीलिए ध्येय में नहीं, धर्म तो सदा निहित, साधन में है,
वह नहीं किसी भी प्रधन-कर्म, हिंसा, विग्रह या रण में है।
तब भी जो नर चाहते, धर्म, समझे मनुष्य संहारों को
गूँथना चाहते वे, फूलों के साथ तप्त अंगारों को।

वासना-वह्नि से जो निकला, कैसे हो वह संयुग कोमल?
देखने हमें देगा वह क्यों करुणा का पन्थ सुगम शीतल?
जब लोभ सिद्धि का आँखों पर, माँड़ी बन कर छा जाता है,
तब वह मनुष्य से बड़े-बड़े दुश्चिन्त्य कृत्य करवाता है।

फिर क्या विस्मय, कौरव-पाण्डव भी नहीं धर्म के साथ रहे?
जो रंग युद्ध का है, उससे, उनके भी अलग न हाथ रहे।
दोनों ने कालिख छुई, शीश पर जय का तिलक लगाने को,
सत्पथ से दोनों डिगे; दौड़कर, विजय-बिन्दु तक जाने को।

इस विजय-द्वन्द्व के बीच युद्ध के दाहक कई दिवस बीते;
पर, विजय किसे मिल सकती थी, जबतक थे द्रोण-कर्ण जीते।
था कौन सत्य-पथ पर डटकर, जो उनसे योग्य समर करता?
धर्म से मार कर उन्हें जगत् में, अपना नाम अमर करता?

'है कहाँ पार्थ? है कहाँ पार्थ?' राधेय गरजता था क्षण-क्षण।
'करता क्यों नहीं प्रकट होकर, अपने विकराल प्रतिभट से रण?
क्या इन्हीं मूलियों से मेरी रणकला निपट रह जायेगी?
या किसी वीर पर भी अपना, वह चमत्कार दिखलायेगी?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'हो छिपा जहाँ भी पार्थ, सुने, अब हाथ समेटे लेता हूँ,
सबके समक्ष द्वैरथ-रण की, मैं उसे चुनौती देता हूँ।
हिम्मत हो तो वह बढ़े, व्यूह से निकल जरा सम्मुख आये,
दे मुझे जन्म का लाभ और साहस हो तो खुद भी पाये।'

पर, चतुर पार्थ-सारथी आज, रथ अलग नचाये फिरते थे,
कर्ण के साथ द्वैरथ-रण से, शिष्य को बचाये फिरते थे।
चिन्ता थी, एकघ्नी कराल, यदि द्विरथ-युद्ध में छूटेगी,
पार्थ का निधन होगा, किस्मत, पाण्डव-समाज की फूटेगी।

नटनागर ने इसलिए, युक्ति का नया योग सन्धान किया,
एकघ्निहव्य के लिए घटोत्कच का हरि ने आह्वान किया।
बोले 'बेटा! क्या देख रहा? हाथ से विजय जाने पर है,
जब सबका भाग्य एक तेरे कुछ करतब दिखलाने पर है।

'यह देख कर्ण की विशिख-वृष्टि कैसी कराल झड़ लाती है?
गो के समान पाण्डव-सेना भय-विकल भागती जाती है।
तिल भर भी भूमि न कहीं, खड़े हों जहाँ लोग सुस्थिर क्षण-भर,
सारी रण-भू पर बरस रहे, एक ही कर्ण के बाण प्रखर।

'यदि इसी भाँति सब लोग मृत्यु के घाट उतरते जायेंगे,
कल प्रात कौन सेना लेकर पाण्डव सङ्गर में आयेंगे?
है बड़ी विपद् की घड़ी कर्ण का निर्भय, गाढ़ प्रहार रोक।
बेटा ! जैसे भी बने, पाण्डवी सेना का संहार रोक।'

फूटे ज्यों वह्निमुखी पर्वत, ज्यों उठे सिन्धु में प्रलय-ज्वार,
कूदा रण में त्यों महाघोर गर्जन कर दानव किमाकार।
सत्य ही, असुर के आते ही रण का वह क्रम टूटने लगा,
कौरवी अनी भयभीत हुई; धीरज उसका छूटने लगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है कथा, दानवों के कर में थे बहुत-बहुत साधन कठोर,
कुछ ऐसे भी, जिन पर, मनुष्य का चल पाता था नहीं जोर।
उन अगम साधनों के मारे कौरव सेना चिंग्घार उठी,
ले नाम कर्ण का बार-बार व्याकुल कर हाहाकार उठी।

लेकिन, अजस्र-शर-वृष्टि निरत, अनवरत युद्ध-रत धीर कर्ण,
मन-ही-मन था हो रहा स्वयं, इस रण से कुछ विस्मित, विवर्ण,
बाणों से तिल-भर भी अबिद्ध, था कहीं नहीं दानव का तन;
पर, हुआ जा रहा था वह पशु, पल-पल कुछऔर अधिक भीषण।

जब किसी तरह भी नहीं रुद्ध, हो सकी महादानव की गति,
सारी सेना को विकल देख, बोला कर्ण से स्वयं कुरुपति,
'क्या देख रहे हो सखे ! दस्यु ऐसे क्या कभी मरेगा यह?
दो घड़ी और जो देर हुई, सबका संहार करेगा यह।

'हे वीर ! विलपते हुए सैन्य का, अचिर किसी विधि त्राण करो।
अब नहीं अन्य गति; आँख मूँद, एकघ्नी का सन्धान करो।
अरि का मस्तक है दूर, अभी अपनों के सीस बचाओ तो,
जो मरण-पाश है पड़ा, प्रथम, उसमें से हमें छुड़ाओ तो।'

सुन सहम उठा राधेय, मित्र की ओर फेर निज चकित नयन,
झुक गया विवशता में कुरुपति का अपराधी, कातर आनन।
मन-ही-मन बोला कर्ण, 'पार्थ! तू वय का बड़ा बली निकला,
या यह कि आज फिर एक बार, मेरा ही भाग्य छली निकला।'

रहता आया था मुदित कर्ण जिसका अजेय सम्बल लेकर,
था किया प्राप्त जिसको उसने, इन्द्र को कवच-कुण्डल देकर,
जिसकी करालता में जय का, विश्वास अभय हो पलता था,
केवल अर्जुन के लिए जिसे राधेय जुगाये चलता था;

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह काल-सर्पिणी की जिह्वा, वह अटल मृत्यु की सगी स्वसा,
घातकता की वाहिनी, शक्ति यम की प्रचण्ड, वह अनल-रसा,
लपलपा आग-सी एकघ्नी तूणीर छोड़ बाहर आयी,
चाँदनी मन्द पड़ गयी, समर में दाहक उज्ज्वलता छायी।

कर्ण ने भाग्य को ठोंक उसे, आखिर दानव पर छोड़ दिया,
विह्वल हो कुरुपति को विलोक, फिर किसी ओर मुख मोड़ लिया।
उस असुर प्राण को बेध, दृष्टि सबकी क्षण भर त्रासित करके,
एकघ्नी ऊपर लीन हुई, अम्बर को उद्भासित करके।

पा धमक, धरा धँस उछल पड़ी, ज्यों गिरा दस्यु पर्वताकार,
'हा!हा!' की चारों ओर मची, पाण्डव-दल में व्याकुल पुकार।
नरवीर युधिष्ठिर, नकुल, भीम, रह सके कहीं कोई न धीर,
जो जहाँ खड़े थे, लगे वहीं करने कातर क्रन्दन गभीर।

सारी सेना थी चीख रही, सब लोग व्यग्र बिलखाते थे;
पर बड़ी विलक्षण बात ! हँसी नटनागर रोक न पाते थे।
टल गयी विपद् कोई सिर से, या मिली कहीं मन-ही-मन जय?
क्या हुई बात? क्या देख हुए केशव इस तरह विगत संशय?

लेकिन समर को जीत कर,
निज वाहिनी को प्रीत कर,
वलयित गहन गुञ्जार से,
पूजित परम जयकार से,

राधेय संगर से चला, मन में कहीं खोया हुआ,
जय-घोष की झंकार से आगे कहीं सोया हुआ।
हारी हुई पाण्डव-चमू में हँस रहे भगवान् थे,
पर जीत कर भी कर्ण के हारे हुए-से प्राण थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्या, सत्य ही, जय के लिए केवल नहीं बल चाहिए?
कुछ बुद्धि का भी घात; कुछ छल-छद्म-कौशल चाहिए?
क्या भाग्य का आघात है।
कैसी अनोखी बात है?

मोती छिपे आते किसी के आँसुओं के तार में,
हँसता कहीं अभिशाप ही आनन्द के उच्चार में।
मगर, यह कर्ण की जीवन-कथा है,
नियति का, भाग्य का इंगित वृथा है।

मुसीबत को नहीं जो झेल सकता,
निराशा से नहीं जो खेल सकता।

पुरुष क्या, शृंखला को तोड़ करके,
चले आगे नहीं जो जोर करके?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सप्तम सर्ग

'रथ सजा, भेरियाँ धमक उठीं, गहगहा उठा अम्बर विशाल,
कूदा स्यन्दन पर गरज कर्ण ज्यों उठे गरज क्रोधान्ध काल।
बज उठे रोर कर पटह कम्बु, उल्लसित वीर कर उठे हूह,
उच्छल सागर-सा चला कर्ण को लिये क्षुब्ध सैनिक समूह।

अंगार-वृष्टि पा धधक उठे जिस तरह शुष्क कानन का तृण,
सकता न रोक शस्त्री की गति पुंजित जैसे नवनीत मसृण।
यम के समक्ष जिस तरह नहीं चल पाता बद्ध मनुज का वश,
हो गयी पाण्डवों की सेना त्यों ही बाणों से बिद्ध, विवश।

भागने लगे नरवीर छोड़ वह दिशा जिधर भी झुका कर्ण,
भागे जिस तरह लवा का दल सामने देख रोपण सुपर्ण!
'रण में क्यों आये आज?' लोग मन-ही-मन में पछताते थे,
दूर से देखकर भी उसको, भय से सहमे सब जाते थे।

काटता हुआ रण-विपिन क्षुब्ध, राधेय गरजता था क्षण-क्षण।
सुन-सुन निनाद की धमक शत्रु का, व्यूह लरजता था क्षण-क्षण।
अरि की सेना को विकल देख, बढ़ चला और कुछ संमुत्साह
कुछ और समुद्वेलित होकर, उमड़ा भुज का सागर अथाह।

घटोत्कच-वध के बाद द्रोणाचार्य का निधन हुआ और उसके बाद कौरवपक्ष का सेनापति कर्ण बनाया गया। प्रस्तुत सर्ग में कर्ण के अन्तिम युद्ध और उसके महाबलिदान का वर्णन है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गरजा अशंक हो कर्ण, 'शल्य ! देखो कि आज क्या करता हूँ,
कौन्तेय-कृष्ण, दोनों को ही, जीवित किस तरह पकड़ता हूँ।
बस, आज शाम तक यहीं सुयोधन का जय-तिलक सजा करके,
लौटेंगे हम, दुन्दुभि अवश्य जय की, रण-बीच बजा करके।

इतने में कुटिल नियति प्रेरित पड़ गये सामने धर्मराज,
टूटा कृतान्त-सा कर्ण, कोक पर पड़े टूट जिस तरह बाज।
लेकिन, दोनों का विषम युद्ध क्षण भर भी नहीं ठहर पाया,
सह सकी न गहरी चोट, युधिष्ठिर की मुनि-कल्प, मृदुल काया।

भागे वे रण को छोड़, कर्ण ने झपट दौड़कर गहा ग्रीव,
कौतुक से बोला, 'महाराज ! तुम तो निकले कोमल अतीव।
हाँ, भीरु नहीं, कोमल कहकर ही, जान बचाये देता हूँ।
आगे की खातिर एक युक्ति भी सरल बताये देता हूँ।

'हैं विप्र आप, सेविये धर्म तरु-तले कहीं, निर्जन वन में,
क्या काम साधुओं का, कहिये, इस महाघोर, घातक रण में?
मत कभी क्षात्रता के धोखे, रण का प्रदाह झेला करिये,
जाइये, नहीं फिर कहीं गरुड़ की झपटों से खेला करिये।'

भागे विपन्न हो समर छोड़ ग्लानि में निमज्जित धर्मराज,
सोचते, 'कहेगा क्या मन में जानें यह शूरों का समाज?
प्राण ही हरण करके रहने क्यों नहीं हमारा मान दिया?
आमरण ग्लानि सहने को ही पापी ने जीवन-दान दिया।'

समझे न हाय, कौन्तेय! कर्ण ने छोड़ दिये, किसलिए प्राण,
गरदन पर आकर लौट गयी सहसा, क्यों विजयी की कृपाण?
लेकिन, अदृश्य ने लिखा, कर्ण ने वचन धर्म का पाल दिया,
खड्ग का छीन कर ग्रास, उसे माँ के अंचल में डाल दिया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कितना पवित्र यह शील! कर्ण जब तक भी रहा खड़ा रण में,
चेतनामयी माँ की प्रतिमा घूमती रही तब तक मन में।
सहदेव, युधिष्ठिर, नकुल, भीम को बार-बार वश में लाकर,
कर दिया मुक्त हँस कर उसने भीतर से कुछ इंगित पाकर।

देखता रहा सब शल्य, किन्तु, जब इसी तरह भागे पवितन,
बोला, होकर वह चकित, कर्ण की ओर देख, यह परुष वचन,
'रे सूतपुत्र ! किसलिए विकट यह कालपृष्ठ धनु धरता है?
मारना नहीं है तो फिर क्यों, वीरों को घेर पकड़ता है?

'संग्राम-विजय तू इसी तरह सन्ध्या तक आज करेगा क्या?
मारेगा अरियों को कि उन्हें दे जीवन स्वयं मरेगा क्या?
रण का विचित्र यह खेल, मुझे तो समझ नहीं कुछ पड़ता है,
कायर! अवश्य कर याद पार्थ की, तू मन ही मन डरता है।'

हँसकर बोला राधेय, 'शल्य, पार्थ की भीति उसको होगी,
क्षयमान् क्षणिक, भंगुर शरीर पर मृषा प्रीति जिसको होगी।
इस चार दिनों के जीवन को, मैं तो कुछ नहीं समझता हूँ,
करता हूँ वही, सदा जिसको भीतर से सही समझता हूँ।

'पर ग्रास छीन अतिशय बुभुक्षु, अपने इन बाणों के मुख से,
होकर प्रसन्न हँस देता हूँ, चंचल किस अन्तर के सुख से;
यह कथा नहीं अन्तःपुर की, बाहर मुख से कहने की है,
यह व्यथा धर्म के वर-समान, सुख-सहित, मौन सहने की है।

'सब आँख मूँद कर लड़ते हैं, जय इसी लोक में पाने को,
पर, कर्ण जूझता है कोई, ऊँचा सद्धर्म निभाने को,
सबके समेत पंकिल सर में, मेरे भी चरण पड़ेंगे क्या?
ये लोभ मृत्तिकामय जग के, आत्मा का तेज हरेंगे क्या?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'यह देह टूटने वाली है, इस मिट्टी का कब तक प्रमाण?
मृत्तिका छोड़ ऊपर नभ में भी तो ले जाना है विमान।
कुछ जुटा रहा सामान खमण्डल में सोपान बनाने को
ये चार फूल फेंके मैंने, ऊपर की राह सजाने को।

'ये चार फूल हैं मोल किन्हीं कातर नयनों के पानी के,
ये चार फूल प्रच्छन्न दान हैं किसी महाबल दानी के।
ये चार फूल मेरा अदृष्ट था हुआ कभी जिनका कामी,
ये चार फूल पाकर प्रसन्न हँसते होंगे अन्तर्यामी।

'समझोगे नहीं शल्य इसको, यह करतब नादानों का है,
यह खेल जीत से बड़े किसी मकसद के दीवानों का है।
जानते स्वाद इसका वे ही, जो सुरा स्वप्न की पीते हैं,
दुनिया में रह कर भी दुनिया से अलग खड़े जो जीते हैं!'

समझा न, सत्य ही, शल्य इसे, बोला—'प्रलाप यह बन्द करो,
हिम्मत हो तो लो करो समर, बल हो तो अपना धनुष धरो।
लो, वह देखो, वानरी ध्वजा दूर से दिखाई पड़ती है,
पार्थ के महारथ की घर्घर आवाज सुनाई पड़ती है।

'क्या वेगवान हैं अश्व! देख विद्युत् शरमायी जाती है,
आगे सेना छँट रही, घटा पीछे से छायी जाती है!
राधेय! काल यह पहुँच गया, सायक सन्धानित तूर्ण करो,
थे विकल सदा जिसके हित, वह लालसा समर की पूर्ण करो।'

पार्थ को देख उच्छल-उमंग-पूरित उर-पारावार हुआ,
दम्भोलि नाद कर कर्ण कुपित अन्तक-सा भीमाकार हुआ।
बोला 'विधि ने जिस हेतु पार्थ! हम दोनों का निर्माण किया,
जिस लिए प्रकृति के अनल-तत्व का हम दोनों ने पान किया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'जिस दिन के लिए किये आये, हम दोनों वीर अथक साधन,
आ गया भाग्य से आज जन्म-जन्मों का निर्धारित वह क्षण।
आओ हम दोनों विशिख-वह्नि पूजित हो जयजयकार करें,
मर्मच्छेदन से एक-दूसरे का जी-भर सत्कार करें।

'पर, सावधान, इस मिलन-बिन्दु से अलग नहीं होना होगा,
हम दोनों में से किसी एक को आज यहीं सोना होगा।
हो गया बड़ा अतिकाल, आज निर्णय अन्तिम कर लेना है,
शत्रु का या कि अपना मस्तक, काट कर यहीं धर देना है।'

कर्ण का देख यह दर्प पार्थ का, दहक उठा रविकान्त-हृदय,
बोला, 'रे सारथि-पुत्र! किया तू ने, सत्य ही योग्य निश्चय।
पर कौन रहेगा यहाँ? बात यह अभी बताये देता हूँ,
धड़ पर से तेरा सीस मूढ़! ले अभी हटाये देता हूँ।'

यह कह अर्जुन ने तान कान तक धनुष, बाण सन्धान किया,
अपने जानते विपक्षी को हत ही उसने अनुमान किया।
पर, कर्ण झेल वह महा विशिख, कर उठा काल-सा अट्टहास,
रण के सारे स्वर डूब गये, छा गया निनद से दिशाकाश।

बोला, 'शाबाश, वीर अर्जुन! यह खूब गहन सत्कार रहा;
पर, बुरा न मानो, अगर आन कर मुझ पर वह बेकार रहा।
मत कवच और कुण्डल विहीन, इस तन को मृदुल कमल समझो,
साधना-दीप्ति वक्षस्थल को, अब भी दुर्भेद्य अचल समझो।

'अब लो मेरा उपहार, यही यमलोक तुम्हें पहुँचायेगा,
जीवन का सारा स्वाद तुम्हें बस, इसी बार मिल जायेगा।'
कह इस प्रकार राधेय अधर को दबा रौद्रता में भरके,
हुङ्कार उठा घातिका शक्ति विकराल शरासन पर धरके।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सँभलें जब तक भगवान्, नचाये इधर-इधर किंचित् स्यन्दन,
तब तक रथ में ही, विकल, बिद्ध, मूर्च्छित हो गिरा पृथानन्दन।
कर्ण का देख यह समर-शौर्य संगर में हाहाकार हुआ,
सब लगे पूछने, 'अरे, पार्थ का क्या सचमुच संहार हुआ?'

पर नहीं, मरण का तट छूकर, हो उठा अचिर अर्जुन प्रबुद्ध;
क्रोधान्ध गरज कर लगा कर्ण के साथ मचाने द्विरथ-युद्ध।
प्रावृट्-से गरज-गरज दोनों, करते थे प्रतिभट पर प्रहार,
थी तुला-मध्य सन्तुलित खड़ी, लेकिन दोनों की जीत-हार।

इस ओर कर्ण मार्तण्ड-सदृश, उस ओर पार्थ अन्तक-समान,
रण के मिस, मानो, स्वयं प्रलय, हो उठा समर में मूर्तिमान।
जूझना एक क्षण छोड़, स्वतः, सारी सेना विस्मय-विमुग्ध,
अपलक होकर देखने लगी दो शितिकण्ठों का विकट युद्ध।

है कथा, नयन का लोभ नहीं, संवृत कर सके स्वयं सुरगण,
भर गया विमानों से तिल-तिल कुरु भू पर कलकल-नदित-गगन।
थी रुकी दिशा की साँस, प्रकृति के निखिल रूप तन्मय-गभीर,
ऊपर स्तम्भित दिनमणि का रथ, नीचे नदियों का अचल नीर।

इतने में शर के लिए कर्ण ने देखा जो अपना निषंग,
तरकस में से फुंकार उठा, कोई प्रचण्ड विषधर भुजंग,
कहता कि 'कर्ण! मैं अश्वसेन* विश्रुत भुजंगों का स्वामी हूँ।
जन्म से पार्थ का शत्रु परम, तेरा बहुविधि हितकामी हूँ।

* अर्जुन ने जब खाण्डव-वन को जलाया, तब अश्वसेन नामक सर्प की माता बेटे को निगल कर आकाश में उड़ गयी; मगर अर्जुन ने उसका मस्तक बाण से काट डाला। सर्पिणी तो मर गयी, लेकिन अश्वसेन बचकर भाग गया। उसी वैर का बदला लेने के लिए वह कुरुक्षेत्र की रणभूमि में आया था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'बस, एक बार कर कृपा धनुष पर चढ़ शरव्य तक जाने दे,
इस महाशत्रु को अभी तुरत स्यन्दन में मुझे सुलाने दे।
कर वमन गरल जीवन भर का संचित प्रतिशोध उतारूँगा,
तू मुझे सहारा दे, बढ़कर मैं अभी पार्थ को मारूँगा।'

राधेय जरा हँसकर बोला, 'रे कुटिल! बात क्या कहता है?
जय का समस्त साधन नर की अपनी बाँहों में रहता है।
उस पर भी साँपों से मिल कर मैं मनुज, मनुज से युद्ध करूँ?
जीवन भर जो निष्ठा पाली, उससे आचरण विरुद्ध करूँ?

'तेरी सहायता से जय तो मैं अनायास पा जाऊँगा,
आनेवाली मानवता को, लेकिन, क्या मुख दिखलाऊँगा?
संसार कहेगा, जीवन का सब सुकृत कर्ण ने क्षार किया;
प्रतिभट के वध के लिए सर्प का पापी ने साहाय्य लिया।

'रे अश्वसेन! तेरे अनेक वंशज हैं छिपे नरों में भी,
सीमित वन में ही नहीं, बहुत बसते पुर-ग्राम-घरों में भी।
ये नर-भुजंग मानवता का पथ कठिन बहुत कर देते हैं,
प्रतिबल के वध के लिए नीच साहाय्य सर्प का लेते हैं।

'ऐसा न हो कि इन साँपों में मेरा भी उज्ज्वल नाम चढ़े,
पाकर मेरा आदर्श और कुछ नरता का यह पाप बढ़े।
अर्जुन है मेरा शत्रु, किन्तु वह सर्प नहीं, नर ही तो है,
संघर्ष सनातन नहीं, शत्रुता इस जीवन भर ही तो है।

'अगला जीवन किसलिए भला, तब हो द्वेषान्ध बिगाड़ूँ मैं?
साँपों की जाकर शरण, सर्प बन क्यों मनुष्य को मारूँ मैं?
जा भाग, मनुज का सहज शत्रु, मित्रता न मेरी पा सकता,
मैं किसी हेतु भी यह कलंक अपने पर नहीं लगा सकता।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काकोदर को कर विदा कर्ण, फिर बढ़ा समर में गर्जमान,
अम्बर अनन्त झंकार उठा, हिल उठे निर्जरों के विमान।
तूफान उठाये चला कर्ण बल से धकेल अरि के दल को,
जैसे प्लावन की धार बहाये चले सामने के जल को।

पाण्डव-सेना भयभीत भागती हुई जिधर भी जाती थी,
अपने पीछे दौड़ते हुए वह आज कर्ण को पाती थी।
रह गयी किसी के भी मन में जय की किञ्चित् भी नहीं आस,
आखिर, बोले भगवान् सभी को देख व्यग्र,व्याकुल हताश।

'अर्जुन! देखो, किस तरह कर्ण सारी सेना पर टूट रहा,
किस तरह पाण्डवों का पौरुष होकर अशंक वह लूट रहा।
देखो जिस तरफ, उधर उसके ही बाण दिखाई पड़ते हैं,
बस, जिधर सुनो, केवल उसके हुंकार सुनाई पड़ते हैं।

'कैसी करालता! क्या लाघव! कितना पौरुष! कैसा प्रहार!
किस गौरव से यह वीर द्विरद कर रहा समर-वन में विहार!
व्यूहों पर व्यूह फटे जाते, संग्राम उजड़ता जाता है,
ऐसी तो नहीं कमल-वन में भी कुंजर धूम मचाता है।

'इस पुरुष-सिंह का समर देख मेरे तो हुए निहाल नयन,
कुछ बुरा न मानो, कहता हूँ, मैं आज एक चिर-गूढ़ वचन।
कर्ण के साथ तेरा बल भी मैं खूब जानता आया हूँ,
मन-ही-मन तुझसे बड़ा वीर पर इसे मानता आया हूँ।

'औ' देख चरम वीरता आज तो यही सोचता हूँ मन में,
है भी कोई, जो जीत सके, इस अतुल धनुर्धर को रण में?
मैं चक्र सुदर्शन धरूँ और गाण्डीव अगर तू तानेगा,
तब भी, शायद ही, आज कर्ण आतंक हमारा मानेगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'यह नहीं देह का बल केवल, अन्तर्नभ के भी विवस्वान्,
हैं किये हुए मिलकर इसको इतना प्रचण्ड जाज्वल्यमान।
सामान्य पुरुष यह नहीं, वीर यह तपोनिष्ठ व्रतधारी है;
मृत्तिका-पुंज यह मनुज ज्योतियों के जग का अधिकारी है।

'कर रहा काल-सा घोर समर, जय का अनन्त विश्वास लिये,
है घूम रहा निर्भय, जाने, भीतर-क्या दिव्य प्रकाश लिये!
जब भी देखो, तब आँख गड़ी सामने किसी अरिजन पर है,
भूल ही गया है, एक शीश इसके अपने भी तन पर है।

'अर्जुन! तुम भी अपने समस्त विक्रम-बल का आह्वान करो,
अर्जित असंख्य विद्याओं का हो सजग हृदय में ध्यान करो।
जो भी हो तुममें तेज, चरम पर उसे खींच लाना होगा,
तैयार रहो, कुछ चमत्कार तुमको भी दिखलाना होगा।

दिनमणि पश्चिम की ओर ढले देखते हुए संग्राम घोर;
गरजा सहसा राधेय न जानें, किस प्रचण्ड सुख में विभोर।
'सामने प्रकट हो प्रलय! फाड़ तुझको मैं राह बनाऊँगा,
जाना है तो तेरे भीतर संहार मचाता जाऊँगा।

'क्या धमकाता है काल? अरे, आ जा, मुट्ठी में बन्द करूँ,
छुट्टी पाऊँ, तुझको समाप्त कर दूँ, निज को स्वच्छन्द करूँ।
ओ शल्य! हयों को तेज करो, ले चलो उड़ाकर शीघ्र वहाँ,
गोविन्द-पार्थ के साथ डटे हों चुनकर सारे वीर जहाँ।

'हो शस्त्रों का झन-झन निनाद, दन्तावल हों चिंग्घार रहे,
रण को कराल घोषित करके हों समरशूर हुंकार रहे।
कटते हों अगणित रुण्ड-मुण्ड, उठता हो आर्त्तनाद क्षण-क्षण,
झनझना रही हों तलवारें; उड़ते हों तिग्म विशिख सन-सन।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'संहार देह धर खड़ा जहाँ अपनी पैंजनी बजाता हो,
भीषण गर्जन में जहाँ रोर ताण्डव का डूबा जाता हो।
ले चलो जहाँ फट रहा व्योम, मच रहा जहाँ पर घमासान,
साकार ध्वंस के बीच पैठ छोड़ना मुझे है आज प्राण।'

'समझ में शल्य की कुछ भी न आया
हयों को जोर से उसने भगाया।
निकट भगवान् के रथ आन पहुँचा,
अगम, अज्ञात का पथ आन पहुँचा!

अगम की राह, पर, सचमुच, अगम है,
अनोखा ही नियति का कार्यक्रम है।
न जाने न्याय भी पहचानती है,
कुटिलता ही कि केवल जानती है?

रहा दीपित सदा शुभ धर्म जिसका,
चमकता सूर्य-सा था कर्म जिसका,
अबाधित दान का आधार था जो,
धरित्री का अतुल श्रृंगार था जो,

क्षुधा जागी उसी की हाय, भू को,
कहें क्या मेदिनी मानव प्रसू को?
रुधिर के पंक में रथ को जकड़ कर
गयी वह बैठ चक्के को पकड़ कर।

लगाया जोर अश्वों ने न थोड़ा,
नहीं लेकिन, मही ने चक्र छोड़ा।
वृथा साधन हुए जब सारथी के,
कहा लाचार हो उसने रथी से।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'बड़ी राधेय! अद्भुत बात है यह।
किसी दुःशक्ति का ही घात है यह।
जरा-सी कीच में स्यन्दन फँसा है,
मगर, रथ-चक्र कुछ ऐसा धँसा है;

'निकाले से निकलता ही नहीं है,
हमारा जोर चलता ही नहीं है,
जरा तुम भी इसे झकझोर देखो,
लगा अपनी भुजा का जोर देखो।'

हँसा राधेय कर कुछ याद मन में,
कहा, 'हाँ सत्य ही सारे भुवन में,
विलक्षण बात मेरे ही लिए है,
नियति का घात मेरे ही लिए है।

'मगर, है ठीक, किस्मत ही फँसे जब,
धरा ही कर्ण का स्यन्दन ग्रसे जब,
सिवा राधेय के पौरुष प्रबल से,
निकाले कौन उसको बाहुबल से ?'

उछलकर कर्ण स्यन्दन से उतर कर,
फँसे रथ-चक्र को भुज-बीच भर कर,
लगा ऊपर उठाने जोर करके,
कभी सीधा, कभी झकझोर करके।

मही डोली, सलिल-आगार डोला,
भुजा के जोर से संसार डोला।
न डोला, किन्तु, जो' चक्का फँसा था,
चला वह जा रहा नीचे धँसा था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विपद् में कर्ण को यों ग्रस्त पाकर,
शरासनहीन, अस्त-व्यस्त पाकर,
जगा कर पार्थ को भगवान् बोले–
'खड़ा है देखता क्या मौन, भोले?

'शरासन तान, बस अवसर यही है,
घड़ी फिर और मिलने को नहीं है।
विशिख कोई गले के पार कर दे,
अभी ही शत्रु का संहार कर दे।'

श्रवण कर विश्वगुरु की देशना यह,
विजय के हेतु आतुर एषणा यह,
सहम उट्ठा ज़रा कुछ पार्थ का मन,
विनय में ही, मगर, बोला अकिञ्चन।

'नरोचित, किन्तु, क्या यह कर्म होगा?
मलिन इससे नहीं क्या धर्म होगा?'
हँसे केशव, 'वृथा हठ ठानता है।
अभी तू धर्म को क्या जानता है?

'कहूँ जो, पाल उसको, धर्म है यह।
हनन कर शत्रु का, सत्कर्म है यह।
क्रिया को छोड़ चिन्तन में फँसेगा,
उलटकर काल तुझको ही ग्रसेगा।'

भला क्यों पार्थ कालाहार होता,
वृथा क्यों चिन्तना का भार ढोता?
सभी दायित्व हरि पर डाल करके,
मिली जो शिष्टि उसको पाल करके,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लगा राधेय को शर मारने वह,
विपद् में शत्रु को संहारने वह,
शरों से बेधने तन को, बदन को,
दिखाने वीरता निःशस्त्र जन को।

विशिख सन्धान में अर्जुन निरत था,
खड़ा राधेय निःसम्बल, विरथ था,
खड़े निर्वाक् सब जन देखते थे,
अनोखे धर्म का रण देखते थे।

नहीं जब पार्थ को देखा सुधरते,
हृदय में धर्म का टुक ध्यान धरते।
समय के योग्य धीरज को सँजोकर,
कहा राधेय ने गम्भीर होकर।

'नरोचित धर्म से कुछ काम तो लो!
बहुत खेले, जरा विश्राम तो लो।
फँसे रथचक्र को जब तक निकालूँ,
धनुष धारण करूँ, प्रहरण सँभालूँ,

'रुको तब तक, चलाना बाण फिर तुम,
हरण करना, सको तो, प्राण फिर तुम।
नहीं अर्जुन! शरण मैं माँगता हूँ,
समर्थित धर्म से रण माँगता हूँ।

'कलंकित नाम मत अपना करो तुम,
हृदय में ध्यान इसका भी धरो तुम।
विजय तन की घड़ी भर की दमक है,
इसी संसार तक उसकी चमक है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'भुवन की जीत मिटती है भुवन में,
उसे क्या खोजना गिर कर पतन में?
शरण केवल उजागर धर्म होगा,
सहारा अन्त में सत्कर्म होगा।'

उपस्थित देख यों न्यायार्थ अरि को,
निहारा पार्थ ने हो खिन्न हरि को।
मगर, भगवान किञ्चित् भी न डोले,
कुपित हो वज्र-सी यह बात बोले–

'प्रलापी! ओ उजागर धर्म वाले!
बड़ी निष्ठा बड़े सत्कर्म वाले!
मरा, अन्याय से अभिमन्यु जिस दिन,
कहाँ पर सो रहा था धर्म उस दिन?

'हलाहल भीम को जिस दिन पड़ा था,
कहाँ पर धर्म यह उस दिन धरा था?
लगी थी आग जब लाक्षा-भवन में,
हँसा था धर्म हीं तब क्या भुवन में?

'सभा में द्रौपदी को खींच लाके,
सुयोधन की उसे दासी बता के,
सुवामा-जाति को आदर दिया जो,
बहुत सत्कार तुम सबने किया जो,

'नहीं वह और कुछ, सत्कर्म ही था,
उजागर, शीलभूयित धर्म ही था।
जुए में हारकर धन-धाम जिस दिन,
हुए पाण्डव यती निष्काम जिस दिन,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'चले वनवास को तब धर्म था वह,
शकुनियों का नहीं अपकर्म था वह।
अवधि कर पूर्ण जब, लेकिन, फिरे वे,
असल में, धर्म से ही थे गिरे वे।

'बड़े पापी हुए जो ताज माँगा,
किया अन्याय; अपना राज माँगा।
नहीं धर्मार्थ वे क्यों हारते हैं,
अघी हैं, शत्रु को क्यों मारते हैं?

'हमीं धर्मार्थ क्या दहते रहेंगे?
सभी कुछ मौन हो सहते रहेंगे?
कि देंगे धर्म को बल अन्य जन भी?
तजेंगे क्रूरता-छल अन्य जन भी?

'न दीं क्या यातना इन कौरवों ने?
किया क्या-क्या न निर्घिन कौरवों ने?
मगर, तेरे लिए सब धर्म ही था,
दुरित निज मित्र का, सत्कर्म ही था।

'किये का जब उपस्थित फल हुआ है,
ग्रसित अभिशाप से सम्बल हुआ है,
चला है खोजने तू धर्म रण में,
मृषा किल्विष बताने अन्य जन में।

'शिथिल कर पार्थ किञ्चित् भी न मन तू।
न धर्माधर्म में पड़ भीरु बन तू।
कड़ा कर वक्ष को, शर मार इसको,
चढ़ा सायक, तुरत संहार इसको।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हँसा राधेय, 'हाँ अब देर भी क्या?
सुशोभन कर्म में अवसेर भी क्या?
कृपा कुछ और दिखलाते नहीं क्यों?
सुदर्शन ही उठाते हैं नहीं क्यों?

'कहा जो आपने, सब कुछ सही है,
मगर, अपनी मुझे चिन्ता नहीं है।
सुयोधन-हेतु ही पछता रहा हूँ,
बिना विजयी बनाये जा रहा हूँ।

'वृथा है पूछना किसने किया क्या,
जगत् के धर्म को सम्बल दिया क्या।
सुयोधन था खड़ा कल तक जहाँ पर,
न हैं क्या आज पाण्डव ही वहाँ पर?

'उन्होंने कौन-सा अपधर्म छोड़ा?
किये से कौन कुत्सित कर्म छोड़ा?
गिनाऊँ क्या? स्वयं सब जानते हैं,
जगद्गुरु आपको हम मानते हैं।

'शिखण्डी को बनाकर ढाल अर्जुन,
हुआ गांगेय का जो काल अर्जुन,
नहीं वह और कुछ, सत्कर्म ही था।
हरे! कह दीजिये, वह धर्म ही था।

'हुआ सात्यकि बलि का त्राण जैसे,
गये भूरिश्रवा के प्राण जैसे,
नहीं वह कृत्य नरता से रहित था,
पतन वह पाण्डवों का धर्म-हित था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'कथा अभिमन्यु की तो बोलते हैं,
नहीं पर, भेद यह क्यों खोलते हैं?
कुटिल षड्यन्त्र से रण से विरत कर,
महाभट द्रोण को छल से निहत कर,

'पतन पर दूर पाण्डव जा चुके हैं,
चतुर्गुण मोल बलि का पा चुके हैं।
रहा क्या पुण्य अब भी तोलने को।
उठा मस्तक, गरज कर बोलने को?

'वृथा है पूछना, था दोष किसका?
खुला पहले गरल का कोष किसका?
जहर अब तो सभी का खुल रहा है,
हलाहल से हलाहल धुल रहा है।

'जहर की कीच में ही आ गये जब,
कलुष बन कर कलुष पर छा गये जब,
दिखाना दोष फिर क्या अन्य जन में,
अहं से फूलना क्या व्यर्थ मन में?

'सुयोधन को मिले जो फल किये का,
कुटिल परिणाम द्रोहानल पिये का,
मगर, पाण्डव जहाँ अब चल रहे हैं,
विकट जिस वासना में जल रहे हैं,

'अभी पातक बहुत करवायेगी वह,
उन्हें जानें कहाँ ले जायेगी वह।
न जानें, वे इसी विष से जलेंगे,
कहीं या बर्फ में जाकर गलेंगे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'सुयोधन पूत या अपवित्र ही था,
प्रतापी, वीर, मेरा मित्र ही था।
किया मैंने वही, सत्कर्म था जो,
निभाया मित्रता का धर्म था जो।

'नहीं किञ्चित् मलिन अन्तर्गगन है,
कनक-सा ही हमारा स्वच्छ मन है;
अभी भी शुभ्र उर की चेतना है,
अगर है तो, यही बस वेदना' है।

'वधूजन को नहीं रक्षण दिया क्यों?
समर्थन पाप का उस दिन किया क्यों?
न कोई योग्य निष्कृति पा रहा हूँ,
लिये यह दाह मन में जा रहा हूँ।

'विजय दिलवाइये केशव! स्वजन को।
शिथिल, सचमुच, नहीं कर पार्थ! मन को।
अभय हो वेधता जा अंग अरि का,
द्विधा क्या, प्राप्त है जब संग हरि का!

'मही! ले सौंपता हूँ आप रथ में,
गगन में खोजता हूँ अन्य पथ में।
भले ही लील ले इस काठ को तू,
न पा सकती पुरुष विभ्राट् को तू,

महानिर्वाण का क्षण आ रहा है, नया आलोक-स्यन्दन आ रहा है।
पस्या से बने हैं यन्त्र जिसके, कसे जप-याग से हैं तन्त्र जिसके;
ते हैं कीर्तियों के वाजि जिसमें, चमकती है किरण की राजि जिसमें;
मारा पुण्य जिसमें झूलता है, विभा के पद्म-सा जो फूलता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'रचा मैंने जिसे निज पुण्य-बल से, दया से, दान से, निष्ठा अचल से,
हमारे प्राण-सा ही पूत है जो, हुआ सद्धर्म से उद्भूत है जो;
न तत्वों की तनिक परवाह जिसको, सुगम सर्वत्र ही है राह जिसको;
गगन में जो अभय हो घूमता है, विभा की ऊर्मियों पर झूमता है।

'अहा! आलोक-स्यन्दन आन पहुँचा,
हमारे पुण्य का क्षण आन पहुँचा।
विभाओं सूर्य की! जय-गान गाओ,
मिलाओ, तार किरणों के मिलाओ।

'प्रभा मण्डल! भरो झंकार, बोलो!
जगत की ज्योतियों! निज द्वार खोलो!
तपस्या रोचिभूपित ला रहा हूँ,
चढ़ा मैं रश्मि-रथ पर आ रहा हूँ।'

गगन में बद्ध कर दीपित नयन को,
किये था कर्ण जय सूर्यस्थ मन को,
लगा शर एक ग्रीवा में सँभल के!
उड़ी ऊपर प्रभा तन से निकल के!

गिरा मस्तक मही पर छिन्न होकर!
तपस्या-धाम तन से भिन्न होकर!
छिटक कर जो उड़ा आलोक तन से,
हुआ एकात्म वह मिलकर तपन से!

उठी कौन्तेय की जयकार रण में,
मचा घनघोर हाहाकार रण में!
सुयोधन बालकों-सा रो रहा था!
खुशी से भीम पागल हो रहा था!

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फिरे आकाश से सुरयान सारे,
नतानन देवता नभ से सिधारे।
छिपे आदित्य होकर आर्त्त घन में,
उदासी छा गयी सारे भुवन में।

युधिष्ठिर प्राप्त कर निस्तार भय से,
प्रफुल्लित हो बहुत, दुर्लभ विजय से,
दृगों में मोद के मोती सजाये,
बड़े ही व्यग्र हरि के पास आये।

कहा, 'केशव ! बड़ा था त्रास मुझको,
नहीं था यह कभी विश्वास मुझको,
कि अर्जुन यह विपद् भी हर सकेगा,
किसी दिन कर्ण रण में मर सकेगा।

'इसी के त्रास में अन्तर पगा था,
हमें वनवास में भी भय लगा था।
कभी निश्चिन्त मैं क्या हो सका था?
न तेरह वर्ष सुख से सो सका था।

'बली योद्धा, बड़ा विकराल था वह!
हरे! कैसा भयानक काल था वह?
मुपल विप में बुझे थे, बाण क्या थे!
शिला निर्मोघ ही थी, प्राण क्या थे!

'मिला कैसे समय निर्भीत है यह?
हुई सौभाग्य से ही जीत है यह।
नहीं यदि आज ही वह काल सोता,
न जानें क्या समर का हाल होता?'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदासी में भरे भगवान् बोले,
'न भूलें आप केवल जीत को ले।
नहीं पुरुषार्थ केवल जीत में है।
विभा का सार शील पुनीत में है।

'विजय, क्या जानिये, बसती कहाँ है?
विभा उसकी अजय हँसती कहाँ है?
भरी वह जीत के हुंकार में है?
छिपी अथवा लहू की धार में है?

'हुआ जाने नहीं क्या आज रण में?
मिला किसको विजय का ताज रण में?
किया क्या प्राप्त? हम सबने दिया क्या?
चुकाया मोल क्या? सौदा लिया क्या?

'समस्या शील की, सचमुच गहन है।
समझ पाता नहीं कुछ क्लान्त मन है।
न हो निश्चिन्त कुछ अवधानता है।
जिसे तजता, उसी को मानता है।

'मगर, जो हो, मनुज सुवरिष्ठ था वह।
धनुर्धर ही नहीं, धर्मिष्ठ था वह।
तपस्वी, सत्यवादी था, व्रती था,
बड़ा ब्रह्मण्य था, मन से यती था।

'हृदय का निष्कपट, पावन क्रिया का,
दलित-तारक, समुद्धारक त्रिया का।
बड़ा बेजोड़ दानी था, सदय था,
युधिष्ठिर! कर्ण का अद्भुत हृदय था!

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'किया किसका नहीं कल्याण उसने?
दिये क्या-क्या न छिपकर दान उसने?
जगत् के हेतु ही सर्वस्व खोकर,
मरा वह आज रण में निःस्व होकर।

'उगी थी ज्योति जग को तारने को।
न जनमा था पुरुष वह हारने को।
मगर, सब कुछ लुटा कर दान के हित,
सुयश के हेतु, नर-कल्याण के हित।

'दया कर शत्रु को भी त्राण देकर,
खुशी से मित्रता पर प्राण देकर,
गया है कर्ण भू को दीन करके,
मनुज-कुल को बहुत बलहीन करके,

'युधिष्ठिर! भूलिये, विकराल था वह,
विपक्षी था, हमारा काल था वह।
अहा! वह शील में कितना विनत था?
दया में, धर्म में कैसा निरत था!

'समझ कर द्रोण मन में भक्ति भरिये,
पितामह की तरह सम्मान करिये।
मनुजता का नया नेता उठा है।
जगत् से ज्योति का जेता उठा है!'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणियाँ

प्रथम सर्ग [पृष्ठ 13 से 19 तक]

पुनीत अनल=पुण्यवश ही तो अग्निदेव न केवल स्वयं पवित्र, बल्कि पवित्र करनेवाले हैं। वस्तुतः यहाँ 'पुनीत' शर्त है। महाभारत-काल में सांख्य मत था कि समस्त अस्तित्व पाँच महाभूतों (भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश) का नाना रूप है। मनुष्य की प्रकृति में अग्नि के लक्षण–तेज, पवित्रता, निर्भयता, ज्योतिकामना आदि हैं। किन्तु, नींद, आलस्य, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, निर्ममता आदि भी तो इसी के लक्षण हैं। अतः अग्नि के मात्र अच्छे लक्षणों को नमस्कार, उन्हीं की जयकामना। **वृन्त**=प्रसवबन्धन। फल-फूल की जड़, भेंटी। **नमस्य**=नमस्कार करने योग्य। **इतिहास में लीक खींचना**=अभूतपूर्व कार्य कर दिखाना। **द्वन्द्व-युद्ध**=वह युद्ध, जिसमें केवल दो परस्पर लड़ें।

कृपाचार्य=महर्षि गौतम के पुत्र शरद्वान् थे, जो बाणों के साथ पैदा हुए थे। उनके यहाँ एक पुत्र कृप या कृपाचार्य और एक कन्या कृपी का जन्म हुआ। महाराज शान्तनु ने उन दोनों का पालन-पोषण किया। कृप धनुर्विद्या में निष्णात थे। कृपी का विवाह आचार्य द्रोण से हुआ।

भरतवंश=महाराज सर्वदमन भरत, दुष्यन्त और शकुन्तला के पुत्र थे। उसी वंश में संवरण हुए जिन्होंने भरतवंश का यशोविस्तार किया। संवरण के पुत्र कुरु थे, जो कौरवों और पाण्डवों के पूर्व-पुरुष थे। **अवतंस**=भूषण। **श्वपच**=कुत्ते का मांस पकाने-खानेवाला, चाण्डाल। **अंगदेश**=गंगा तट पर स्थित प्राचीन राज्य। वर्तमान बिहार के भागलपुर और मुंगेर आदि जिले। **हया**=लाज। **प्रतिबल**=जोड़ का बली, प्रतिद्वन्द्वी।

द्वितीय सर्ग [पृष्ठ 20 से 32 तक]

विरल=जो सघन न हो, छिदरा। **अधित्यका**=पहाड़ पर की समतल भूमि। **प्रस्रवण**=झरना। **उटज**=तृण-कुटी। **तन्द्रिल**=ऊँघते हुए। **लेहन**=चाटना। **शाकल्य**=हवन-सामग्री (के बचे टुकड़े)। **छदन**=पत्ते।

आतप=धूप। **रोमन्थन**=पागुर। **विवर**=छिद्र, माँद। **विश्रब्ध**=निर्भीक, आश्वस्त। **चीवर**=मुनि-वस्त्र। **इंगुद**=हिगोट, जिसका तेल जलता था

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और जिससे स्त्रियाँ शृंगार के लिए हाथ-पाँव भी रँगती थीं। अजिन =मृगछाला। दर्भ=कुशासन। पालाश=पलाश का यज्ञोपयोगी खण्ड। स्रुवा=यज्ञीय पात्र, जिससे घृत की आहुति दी जाती है। मन से तन का....सिद्ध यंत्र पाया है=मन की सिद्धि : इन्द्रियों पर विजय पाना। तन की सिद्धि हुई शारीरिक विजय। अस्त्र-शस्त्र इस विजय के साधन हैं। क्लीव=नपुंसक।

षड्विकार=शारीरिक परिवर्तन प्रत्येक जीव में छह प्रकार के स्पष्ट रूपों में दिखते हैं : 1. जन्म, 2. नवजात का बढ़कर बाल्यावस्था में पहुँचना, 3.लड़कपन, 4. जवानी, 5. बुढ़ापा, 6. मृत्यु। यदि जीव को जन्म लेना पड़ा तो शेष विकार अवश्यम्भावी हैं। अतः पुनर्जन्म रूपी भयावह विकार से बचने के लिए इस जन्म का कठोरतापूर्वक सदुपयोग तपस्या है, जिसे षड्विकारों से लड़ना कहा है। 1. काम, 2. क्रोध, 3. मद, 4. लोभ, 5. मात्सर्य और 6. अहंकार भी छह मूल विकार माने गये हैं।

मुख में वेद....ऋषि के सम्बल=परशुराम जी में क्षात्र-शौर्य भी था और ब्राह्म तेज भी। उनके विषय में एक श्लोक प्रसिद्ध है : मुखे तु सकलं शास्त्रं पृष्ठे च सशरं धनुः, इदं ब्राह्मम् इदं क्षात्रं शापादपि शरादपि।' उनके मुख में सब शास्त्र (ब्राह्मणत्व) और पीठ पर बाण-युक्त धनुष (क्षत्रियत्व) हैं। वे शाप और शर दोनों से काम ले सकते हैं। मुग्ध=मोहित।

कर लेना....के आने पर=चार आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) में, संन्यास तपस्या की उम्र है।

शिलोञ्छवृत्ति=(शिल=खेत में गिरी बालियाँ चुनना, उञ्छ=आश्रमों आदि के रसोईघर में पका, बिना खाया, बचा हुआ अन्न सुखाकर खाने के लिए रखना। वृत्ति=आजीविका।) कुछ तपस्वी ब्राह्मण न तो खेती करते थे, न भिक्षाटन। किसान के खेत काट लेने के बाद वे बिखरी बालियाँ-दाने चुन लेते थे। उसका आधा वे कृषक को दे आते थे और शेष से अपनी जीविका चलाते थे। फसल के दिन बीतने पर भण्डारों का सुखाया हुआ बचा अन्न उनका भोजन था। जीवन-यापन की इन्हीं विधियों का नाम शिलोञ्छवृत्ति है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेश्म=घर। परशोषक=दूसरों के शोषक। कल्पित अभाव=जो अभाव वस्तुतः है नहीं। शंख-गंगाजल=पूजा के सामान। जो भी खिलता....जाता है=सभी उत्पादन क्षत्रियों (राज-वर्ग) के अधिकार में अनुचित ढंग से चले जाते हैं। भुजा=क्षत्रिय, जो ब्रह्माजी के बाहु से उत्पन्न माने जाते हैं।

विप्र जाति के....उठाने दो=कोमलता-युक्त कठोरता, धीरता-वीरता के साथ तपस्या, और मानवता के महागुणों की पहचान की ये शर्तें विप्रों के अतिरिक्त दूसरे लोग नहीं पूरी कर सकते। अतः, दूसरों के शस्त्र-धारण का परशुराम जी निषेध करते थे। वज्रदंष्ट्र=वज्रकीट, लकड़ी और पत्थर तक छेद डालनेवाला कीड़ा। उरु=जाँघ। अभिजन =कुलसमूह, वंश। अन्तेवासी=गुरु के पास रहकर शिक्षा पानेवाला।

कार्त्तवीर्य=कृतवीर्य का बेटा, सहस्रार्जुन नामक कभी न हारा हुआ राजा। परशुराम जी के पिता, जमदग्नि ऋषि के आश्रम में उसने बहुत ऊधम मचाया, परशुराम जी ने दण्डस्वरूप उसे मार डाला। किल्विष=पाप। निःसंग=अकेला।

तृतीय सर्ग [पृष्ठ 33 से 48 तक]

खम ठोंकना=भुजाएँ अपने हाथों ठोंकना। अपने बाहुबल के भरोसे भिड़ना। वर्त्तिका=बत्ती। इक्षु-दण्ड=ईख का डण्डा। धूप-घाम=धूप और पसीना। परिधि-बन्ध=क्षितिज, चक्रवाल। मैनाक-मेरु=दो पौराणिक पर्वत। निकर=राशि। अकाण्ड=आकस्मिक। मन्द्र=मन्दर=पर्वत। जिष्णु=इन्द्र, जो सदा जीते। जलपति=वरुण। धनेश=कुबेर। लोकपाल=दिक्पाल, जिनकी संख्या दस है। वायस=कौआ। धृतराष्ट्र विदुर सुख पाते थे=विराट् रूप दर्शनार्थ उस समय धृतराष्ट्र को दृष्टि मिल गयी थी। निरशन=अशन (भोजन) से हीन। अघटनीय=असम्भव। पृथा=कुन्ती, इसलिए अर्जुन का एक नाम पार्थ है। कुलपाली=वंश का पालन करनेवाली। अपरिणीता=बिन-ब्याही। प्रत्यय=विश्वास। प्रभूत=बहुत अधिक। चाकचिक्य=चकाचौंध। पीते जो वारि प्रपातों में=गरुड़, जो झरने का पानी ऊपर ही पी लेते हैं। अयन=गृह। फणिबन्ध=नाग-पाश। जब कोई देवता नाग-पाश में बँध जाते हैं, तब उन्हें छुड़ाने को गरुड़ बुलाये जाते हैं। धरती का हृदय जुड़ाते हैं=पृथ्वी ने गरुड़ से कहा कि अमृत लाकर मुझे भी दो। गरुड़ स्वर्ग से अमृत ले भागे, किन्तु, उन्हें देख लिया गया। घड़ा उनसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छिन गया। फिर भी थोड़ा-सा अमृत वे पृथ्वी पर ले ही आये। कीजै-दीजै='कीजिये' और 'दीजिये' के पुराने रूप। अवसेर=विलम्ब।

चतुर्थ सर्ग [पृष्ठ 49 से 65 तक]

अनल्प=अल्प नहीं, अधिक। जो नर आत्मदान से....भरता है=आत्मत्याग अपने को ही पूर्ण करता है। जहाँ कहीं है....मोल चुकानेवाला=संसार में जहाँ से प्रकाश आ रहा है, वहाँ कोई ऐसा व्यक्ति खड़ा है, जिसने आत्मत्याग किया है, जिसने अपने व्रत की अन्तिम कीमत चुकायी है; उदाहरण के रूप में आगे आत्मत्यागियों का उल्लेख है :

1. दधीचि—देवताओं ने एक असुर को मारने के लिए दधीचि से उनके मेरुदण्ड की हड्डी माँगी और उन्होंने खुशी-खुशी दे दी। 2. शिवि–राजा शिवि ने एक कबूतर को बचाने के लिए अपना मांस एक बाज को अर्पित कर दिया था। 3. सरमद–औरंगजेब के समय में हुए हैं। वे सूफी या रहस्यवादी सन्त थे। औरंगजेब ने उनकी खाल खिंचवा ली, क्योंकि वे प्रचलित विश्वास स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। 4. सुकरात–यूनान का दार्शनिक, जिसे सिद्धान्त की रक्षा के लिए जहर का प्याला पीकर मरना पड़ा। 5. मनसूर–मनसूर ईरान के सूफी सन्त थे। वे 'अनलहक'–'मैं सत्य ब्रह्म हूँ' पुकारने के कारण मारे गये। किन्तु उनके मृत शरीर से भी 'अनलहक' की पुकार आती रही। अत्याचारियों ने उनके शरीर की बोटी-बोटी कटवा दी; फिर भी प्रत्येक बोटी से यही आवाज निकलती रही।

किया नियति...छिपकर पुण्य-विवर से=भाग्य ने पुण्य के छिद्र से होकर कर्ण पर वार किया। कवच-कुण्डल कर्ण को इसलिए देना पड़ा कि वह व्रत लिये हुए था कि पूजा के समय जो भी व्यक्ति जो कुछ माँगेगा, उसे वह वस्तु अवश्य दूँगा। निकष=कसौटी। आकटक=कमर तक। वीरुध=काट देने पर भी पुनः हरे-भरे हो जानेवाले पौधे। बहुत डालोंवाली लता। हरि के मायाचर=विष्णु के भेजे हुए मायावी गुप्तचर। साकल्य=सकल, सब कुछ। केवल गन्ध जिन्हें प्रिय=देवता केवल सूँघते हैं, जिह्वा से स्वाद नहीं ले सकते। शरभ=सिंह से भी बलवान् 'अष्टपाद' नामक एक कल्पित पशु। तनुत्र=कवच। परिभव=अपमान। भृगुपति=परशुराम। अप्रतिम=अद्वितीय। सम्बल=साधन। निःश्रेणी=सीढ़ी। मन्द्र=मनुष्य की पूर्ण कण्ठध्वनि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गम्भीर=गहरा। शील-सिन्धु=चरित्र-रूपी समुद्र। तिग्म=प्रखर। ले अमोघ यह अस्त्र=एकघ्नी।

पञ्चम सर्ग [पृष्ठ 66 से 82 तक]

खण्ड-प्रलय=एक समय आयेगा, जब सूर्य से आग बरसने लगेगी, पृथ्वीपर भयंकर उपद्रव होगा और सृष्टि नष्ट हो जायगी। मरीचि=किरण। कृतान्त=यमराज। सितकेशी=उजले केशवाली। सम्भ्रममयी=हलचल में फँसी। वितर्क=उधेड़बुन। चंग=पतंग। अरुण=सूर्य के सारथी, गरुड़ के बड़े भाई। अर्चि=अग्नि-शिला। विभामण्डल=सूर्य। प्रवया=वृद्धा। विगलित=मर्माहत। अंशी=हिस्सेदार। शोध=शुद्ध करने का उपाय। कसाला=विरोध।

केशव पर चिन्ता डाल=अर्जुन पर व्यंग्य। हो चुका धर्म के ऊपर न्योछावर हूँ=कर्ण दुर्योधन के उपकार का बदला चुकाने को धर्म मानता है। दारुण=कठोर। अपयश=बदनामी। अञ्चल का न्यास=माता का प्रेम। हतप्रभ=प्रभाहीन। सह-जेता=विजय का हिस्सेदार। छाती के पूरे=बड़े साहसी। आज की रात बड़ी काली है=महाभारत का आरम्भ अमावस्या को हुआ था। कुन्ती और कर्ण उससे एक दिन पूर्व, अर्थात् कृष्ण चतुर्दशी को मिले थे। यहाँ भावी विनाश एवं दुष्कर्मों का श्लेष है।

षष्ठ सर्ग [पृष्ठ 83 से 95 तक]

उदग्र=ऊँचा, वयोवृद्ध। द्रोह-दव=द्रोह रूपी जंगली आग। अवशंसी=निन्दक। विहित मित्र=विधान द्वारा बनाये गये मित्र।

संकटापन्न जीवन....महायान=विपत्तियों से घिरे मनुष्य के जीवन-जैसा ही (कौरवों का) जहाज समुद्र के बीच है। स्वव्रत=अर्जुन से युद्ध ही कर्ण का व्रत था। तूर्ण=शीघ्र। प्रसन्न=उन्मुक्त, खुला हुआ। दण्डधर=यम। कीर्ण=बिखरे हुए। विशीर्ण=सूखे। अप्रतिहत=जिसे रोकनेवाला कोई न हो। सुपर्ण=बड़े शिकारी-पक्षी। गरुड़। कुड्मल=अधखिली कली। किंशुक=खिले पलाश-सी लाल। बह चलीं मनुज....धोकर=मनुष्य-रक्त, पशुओं के पाँव धोने लगा। मनुष्यता का अनादर हुआ। क्या कहें धर्म...चला=धारणा यह है कि महाभारत में अन्याय केवल कौरवों ने किया। यहाँ संकेत है कि अन्याय दोनों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ने किया। अन्तक=यम। ज्यायान्=बहुत बूढ़ा, जिसकी कमर झुकी हो। विपर्यस्त=कुछ का कुछ।

सिर कटा जयद्रथ.....चूर्ण हुआ=जयद्रथ के पिता को शंकर से वरदान मिला था कि जिसके द्वारा जयद्रथ का मस्तक पृथ्वी पर गिरे, उसके मस्तक के सौ टुकड़े हो जायें। भगवान् श्रीकृष्ण को यह ज्ञात था। जिस समय अर्जुन ने जयद्रथ का वध किया, उस समय उसका पिता कुरुक्षेत्र से दूर तप कर रहा था। अर्जुन ने जयद्रथ का मस्तक इस प्रकार उड़ा दिया कि वह उसके पिता की गोद में जा गिरा। जयद्रथ का पिता, स्वभावतः घबराकर खड़ा हो गया। जयद्रथ का मस्तक उसके पिता की गोद से भूमि पर गिरा, अतः बेचारे तपस्वी के मस्तक के सौ टुकड़े हो गये।

हाँ यह भी हुआ....योगनिरत=भूरिश्रवा सात्यकि को पछाड़ कर उसकी छाती पर चढ़ बैठे, कि भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को इशारा किया, 'अर्जुन!' तुम्हारा शिष्य अब मरनेवाला है।' अर्जुन ने तुरन्त बाण से भूरिश्रवा की बाँह काट डाली। इस अन्याय के विरोध में भूरिश्रवा शस्त्र तजकर तपस्यार्थ बैठ गये। तभी सात्यकि ने धर्माधर्म का विचार किये बिना भूरिश्रवा की गरदन काट ली। मुनि-व्रत=तपस्या। विग्रह=शत्रु का राज्य लूटकर या जलाकर नष्ट कर देनेवाला युद्ध। ग्रथन=गूँथना, जोड़ मिलाना।

जीवन के परम....जाता है=जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य सुख है। सुख की प्राप्ति अधर्म से भी हो सकती है, किन्तु अधर्म त्याज्य है। धर्म में प्रधानता सुख की नहीं, साधन की है। प्रधन=विनाश। **तब भी....अंगारों को**=जैन महात्माओं, बुद्ध, ईसा और गाँधी की शिक्षा के अनुसार युद्ध सदा निन्दनीय है। यह मनुष्य का नहीं, पशु का स्वभाव है, अतएव मनुष्य को चाहिए कि अपने विवाद का हल वह शान्तिमय उपायों से निकाले। दूसरी विचारधारा के अनुसार-अच्छे उद्देश्य की प्राप्ति यदि शान्ति से सम्भव न हो, तो युद्ध अनिवार्य है। प्रस्तुत पंक्तियों का भाव यह है कि युद्ध, किसी भी अवस्था में धर्म नहीं है। धर्म फूल है और युद्ध अंगार। दोनों को एक ही माला में गूँथना सम्भव नहीं।

वासना-वह्नि से....संयुग कोमल–युद्ध की स्थिति अतृप्त वासना की अधीरता के कारण आती है जो एक ज्वाला है। इससे कोमलता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की आशा नहीं की जा सकती। संयुग=युद्ध। विजय-द्वन्द्व=जीत का संघर्ष। प्रतिभट=प्रतियोगी वीर। द्वैरथ-रण=केवल दो रथियों का युद्ध। एकघ्नी=इन्द्र से प्राप्त अस्त्र जो एक ही व्यक्ति का हनन कर लौट जानेवाला था। एकघ्निहव्य=एकघ्नी का शिकार। घटोत्कच=हिडिम्बा नामक एक राक्षसी से उत्पन्न भीम का भयानक वीर पुत्र। किमाकार=अद्‌भुत और भयानक आकारवाला। अनी=सेना।

है कथा....घोर=राक्षस माया-युद्ध करते थे। अनेक हो जाना, अन्धकार फैला देना, अस्थि और रक्त बरसा देना आदि—इसी माया के खेल थे। घटोत्कच रात में युद्ध करने आया था और रात में राक्षसों का बल बढ़ जाता था। अजस्र-शर-वृष्टि-निरत=लगातार बाण बरसाने में संलग्न। विवर्ण=फीका पड़ा हुआ। सुन सहम उठा राधेय=कर्ण एकघ्नी अर्जुन-हनन के लिए जुगाये था। दुर्योधन ने घटोत्कच पर ही इसे व्यय कराना चाहा, इससे कर्ण स्तम्भित रह गया। स्वसा=बहन। घातकता=मृत्यु। अनल-रसा=आग-सी, मजा चखा देने वाली, निश्चित नाशक। क्या हुई....विगत-संशय=कृष्ण को संशय था कि कर्ण अर्जुन पर एकघ्नी चला बैठा तो अर्जुन की रक्षा कैसे होगी ? अब वह संशय जाता रहा। प्रीत=प्रसन्न। वलयित=घिरा हुआ। जय-घोष की झंकार से....सोया हुआ=विजय से निराश, मन से उस जगह पहुँचा हुआ, जहाँ विजय नहीं, कोई और चिन्ता थी। चमू=सेना।

सप्तम सर्ग [पृष्ठ 96 से 117 तक]

भेरी=नगाड़ा। पटह=वड़ा ढोल। कम्बु=शंख। शस्त्री=छुरी। मसृण=नर्म, अकठोर। रोषण=क्रुद्ध। मुनिकल्प=मुनिवत् तपःक्षीण। हाँ भीरु नहीं....बचाये देता हूँ=युधिष्ठिर अपने समय में बड़े आदरणीय थे। अतएव, कर्ण ने भी उनके साथ शील निभाया। अदृश्य=वह शक्ति जो मनुष्य के कार्यों का लेखा-जोखा रखती है। पवितन=वज्रांग (भीम)। रे सूतपुत्र किसलिए....डरता है=युधिष्ठिर का मामा शल्य रथ चलाने में वहुत चतुर था। अनुमान था कि कर्ण शल्य को सारथी बनायेगा। युधिष्ठिर ने शल्य से कह रखा था कि रथ हाँकते समय उसे हतोत्साह करते रहिये। दुर्योधन ने जब शल्य से कर्ण का रथ हाँकने को कहा, तब शल्य ने शर्त लगा दी कि 'मेरे मुख से जो निकले, कर्ण उसका प्रतिवाद न करे, तो मैं रथ हाँक सकता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हूँ।' इसलिए वह ऐसी कठोर बातें कर सका और उसकी कटूक्तियों को कर्ण सहता रहा। कालपृष्ठ=कर्ण का धनुष।

वह कथा नहीं....कहने की है=कर्ण ने कुन्ती को दिया गया वचन गुप्त रखा। **ये चार फूल**=अभय-दान पाये चारों पाण्डव। **अदृश्य**=भाग्य। **वानरी ध्वजा**=अर्जुन के रथ की ध्वजा पर हनुमान जी विराजते थे, इसलिए अर्जुन का एक नाम 'कपिध्वज' है। **दम्भोलि नाद**=बिजली की-सी कड़क। **प्रकृति के अनल तत्व**=क्रोध, युद्ध-भावना। **रविकान्त-हृदय**=सूर्य के प्रकाश से सूर्यकान्त मणि दीप्त होता है। कर्ण के उत्साह की किरणों से अर्जुन का हृदय उसी के समान दहक उठा। **प्रावृट्**=वर्षा ऋतु, बादल। **शीतिकण्ठ**=शंकर। **शरव्य**=शर का लक्ष्य, यानी अर्जुन। **प्रतिबल के बध....लेते हैं**=प्रतियोगी से लड़ने में नीच की सहायता लेना सर्प की सहायता लेने के समान है। **काकोदर**=सर्प। **निर्जर**=देव, जरामुक्त। **द्विरद**=दो दाँतोंवाला, हाथी। **अन्तर्नभ के भी विवस्वान**=हृदयाकाश के सूर्य, कर्ण के आत्मतेज की ओर संकेत है। **अन्तर्नभ**=अन्तर्गगन=हृदयाकाश=अन्तःस्थ ब्रह्म। **विवस्वान्**=सूर्य। **मृत्तिका-पुञ्ज....अधिकारी है**=कर्ण की इस प्रशंसा में भगवान् का यह संकेत है कि अब इसे स्वर्ग भेजो।

क्या धमकाता है....स्वच्छन्द करूँ=काल ही मृत्यु है, वही जन्म भी लाता है। कर्ण का आशय है कि अब मैं क्षण-भर में मोक्ष पानेवाला हूँ। अतएव अरे काल, तुझे मुट्ठी में बन्द करके अपने जीवन से तेरा अस्तित्व समाप्त करूँगा। यहाँ उसे मृत्यु का पूर्वाभास हो रहा है। **दन्तावल**=हाथी। **तिग्म**=प्रखर, अधिक गर्म।

हँसा राधेय कर कुछ याद मन में=एक बार आखेट करते हुए कर्ण के बाण से एक ब्राह्मण की गाय मर गयी। ब्राह्मण ने कर्ण को शाप दिया कि अन्त समय में पृथ्वी तेरे रथ के चक्के को ग्रस लेगी। कर्ण को वही शाप याद आया और मृत्यु को समीप जानकर वह हँसा।

जगाकर पार्थ को=कर्ण की आकस्मिक विपत्ति को चुपचाप देख रहे अर्जुन को भगवान् ने युद्ध की याद दिलायी। **विश्वगुरु**=कृष्ण। **देशना**=उपदेश। **एषणा**=इच्छा। **क्रिया को छोड़ चिन्तन में....ग्रसेगा**=कृष्ण अर्जुन को सावधान करते हैं कि वह ऊहापोह में न फँसे; अन्यथा अवसर उसके हाथ से निकल जायेगा और कर्ण ही इस स्थिति में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आ जायेगा कि उसे मार डाले। शिष्टि=आज्ञा। निःसम्बल=साधन-विहीन। प्रहरण=हथियार। विजय तन की....चमक है=मनुष्य अधर्म के रास्ते से आत्मा को मारकर शारीरिक विजय प्राप्त करता है; ऐसी विजय से भी यश और सुख तो मिलता है, किन्तु, यह इसी लोक तक है। ऐसी विजय परलोक में पतन का कारण बनती है। लगी थी आग...भुवन में=पाण्डवों को जला डालने के लिए दुर्योधन ने लाख का एक महल बनवाया था, किन्तु वे बचकर निकल भागे। लाक्षागृह से आग की जो लपटें उठीं उन्हीं में धर्म के हँसने का रूपक है।

सुवामा=नारी। शकुनियों=शकुनि और उस जैसे लोग। न दी क्या यातना इन कौरवों ने=इन पंक्तियों में भगवान् कर्ण को लज्जित एवं निरुत्तर करना चाहते हैं और अर्जुन को क्रुद्ध। दुरित=अपकर्म। सम्बल=साधन (यहाँ रथ)। न धर्माधर्म में पड़ भीरु बन तू=लड़ाई में धर्माधर्म का विचार मनुष्य को कायर बना सकता है। सुशोभन कर्म में अवसेर भी क्या=भगवान् अर्जुन को जो शिक्षा दे रहे हैं उस पर कर्ण व्यंग्य करता है। अवसेर=देर।

वृथा है पूछना....व्यर्थ मन में=पहले एक अति करता है, फिर दूसरा। युद्ध चल पड़ता है तो विवेक नष्ट हो जाता है। दोषी दोनों होते हैं, किसी एक को दोष क्या देना ? बुराई के बदले में भी बुराई की जाये तो वह अच्छाई नहीं हो जाती। अन्तर्गगन=मनवासी ब्रह्म। वधूजन को नहीं रक्षण दिया क्यों=कर्ण पश्चात्ताप करता है कि द्रौपदी-वस्त्र-मोचन में उसने दुर्योधन का साथ क्यों दिया ? निष्कृति=प्रायश्चित। विजय दिलवाइये....स्वजन को=कृष्ण की बहन सुभद्रा अर्जुन की पत्नी थीं। विभ्राट्=शीलभूषित, महान् आत्मा।

नया आलोक स्यन्दन आ रहा है=यहाँ से आलोक-स्यन्दन अथवा रश्मिरथ का रूपक है, इसकी तुलना रामचरितमानस, लंका-काण्ड दोहा सं. 79 और 80 के बीच की चौपाइयों, 'सुनहु सखा...से...मतिधीर' तक में वर्णित धर्मरथ से कीजिये।

राजि=रेखा (डोरी)। रोचिभूपित=प्रभासमयी, उच्च कोटि की। एकात्म=एकाकार। कौन्तेय=अर्जुन। नतानन देवता नभ से सिधारे=कर्ण अन्याय से मारा गया, यह देख देवता दुःखी हुए। तेरह वर्ष=वनवास के; पाण्डवों को सदा भय रहता था कि कहीं कर्ण न आ जाय।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिला-निर्मोघ=चोट करने में अचूक पत्थर। प्राण=बल, शक्ति।

विभा का सार...शील पुनीत में है=कर्ण को मारने में शील नहीं निभा, शीलभ्रष्ट विजय में सुखद कान्ति कहाँ ? जीत के हुंकार=जो पाण्डवों की ओर से उठ रहा है। लहू की धार=जो कर्ण के शव से चल रही है। अवधानता=मन में धारण करता। न हो निश्चिन्त....मानता है=गीता में भगवान् ने कहा है कि क्या करें और क्या न करें, इसके निरूपण में बड़े-बड़े पण्डितों को भी मोह या भ्रम होता है। इस द्वन्द्व में यहाँ भगवान् भी ग्रस्त दिखाये गये हैं। कर्ण को मारने के लिए अधर्म से काम लिया गया, जो निन्द्य है और यदि कर्ण नहीं मारा जाता, तो पाण्डवों की विजय सन्दिग्ध थी। सुवरिष्ठ=बहुत बड़ों में भी बड़ा। ब्रह्मण्य=ब्राह्मणों का हितकारी। समुद्धारक त्रिया का=कर्ण नारियों का उद्धारक था, यह निरूपण द्रौपदी चीर-हरण से खण्डित हो जाता है। किन्तु महाभारतेतर ग्रन्थों से यह भासित होता है कि कर्ण स्त्रियों का वैसा ही आदर करता था, जैसा सभी देशों के वीर करते आये हैं। समझकर....सम्मान करिये=भगवान् युधिष्ठिर से यह तो नहीं कहते कि कर्ण आपका बड़ा भाई था, वही करने को कहते हैं, जो बड़े भाई के लिए करना चाहिए। ज्योति का जेता=पुण्यज्योति पर सदा जयी, कभी पुण्य को विमुख न होने देनेवाला।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'राष्ट्रकवि' की पहचान

किसी भी देश का सच्चा राष्ट्रीय कवि कौन हो सकता है? गेटे ने कहा है कि 'राष्ट्रकवि उसे कहना चाहिए जिसने-(1) अपनी जाति के इतिहास की सभी प्रमुख घटनाओं के पारस्परिक सम्बन्धों का सन्धान पा लिया है। (2) जिसे यह ज्ञात हो चुका है कि उसके जातीय इतिहास में कौन-कौन बड़ी घटनाएँ घटी हैं। (3) उनके परिणाम क्या निकले हैं ?' (4) [राष्ट्रकवि की एक पहचान यह भी है कि] उसे अपने देशवासियों के भीतर निहित महत्ता का ज्ञान होता है। (5) अपनी जाति की गहरी अनुभूतियों से परिचय होता है। (6) उसे इस बात का पता होता है कि उसकी जाति की कर्मठता का प्रेरणा-स्रोत क्या है। [राष्ट्रकवि का एक लक्षण यह भी है कि] (7) उसकी जाति जिस उमंग से चालित होकर सम्पूर्ण इतिहास में काम करती आयी है, उसे वह कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त करे। [राष्ट्रकवि केवल वह कवि हो सकता है] (8) जिसकी रचना में जाति अपनी आत्मा की प्रतिच्छाया देखती हो। (9) जिसमें उस जाति के बाहुबल का आख्यान हो। (10) उसके विचारों की ज्योति, (11) और भावना का गुञ्जन विद्यमान हो और कोरे कवि जातीय कवि होने का दावा कर भी नहीं सकते। [जातीय कवि तो वे ही लोग होते हैं-] (12) जिनमें कल्पना के साथ (13) कर्मठता को भी प्रेरित करने की शक्ति है। (14) जो केवल अतीत की आराधना नहीं करके अपने व्यक्तित्व के जोर से (15) भविष्य को भी प्रभावित करते हैं। [राष्ट्रकवि वह वैनतेय=(गरुड़) है) जो] (16) बहुत ऊँचाई पर उड़ता है-(17) जिसकी एक पाँख तो अतीत को समेटे रहती है किन्तु जो (18) अपनी दूसरी पाँख से भविष्य की ओर संकेत करता है।

[वट-पीपल; दिनकर; 58-59; जनवरी, 51.

(19) [राष्ट्रकवि उसे कहना चाहिए जो] अपने देश की प्रत्येक संस्कृति को अपने में समो लेता है। (20) जो देश के प्रत्येक वर्ग का अपने को प्रतिनिधि समझता है। और (21) सभी सम्प्रदायों के बीच जो देशगत ऐक्य है उसे मुखर बनाता है। [इसी प्रकार—विश्वकवि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसे कहना चाहिए जो दुनिया के हर देश के भीतर जो अन्तर्राष्ट्रीय तत्व है उसे वाणी दे। विश्वकवि बनने की पहली शर्त यह है कि कवि राष्ट्रकवि हो।] (22) जो राष्ट्र के विभिन्न अवयवों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता, वह विश्व के विभिन्न देशों का प्रतिनिधित्व कैसे करेगा ? और भारत में जो भी राष्ट्रकवि होगा, उसे विश्व-कवि ही समझना चाहिए क्योंकि भारत, छोटे पैमाने पर सारा संसार ही है। जैसे प्रत्येक राष्ट्र अपनी अभिव्यक्ति के लिए लालायित रहता है, उसी प्रकार देश का प्रत्येक सम्प्रदाय अपनी अभिव्यक्ति खोजता है। राष्ट्र-पुरुष और राष्ट्रकवि बनना समान रूप से कठिन कार्य है। 'दोनों' के लिए असीम धैर्य और अपरिमित उदारता की आवश्यकता है।

[साहित्यमुखी; दिनकर; पृष्ठ 11-12; मार्च, '68]

[राष्ट्रकवि किसे कहना चाहिए?] अपने देश में और अन्य देशों में भी यह प्रथा चल रही है कि जो भी कवि राष्ट्रीय कविताएँ लिखता हो उसे राष्ट्रकवि कह देते हैं, किन्तु यह काफी नहीं है। प्रत्येक जाति की आध्यात्मिक विशेषता होती है, कोई सांस्कृतिक वैशिष्ट्य होता है, संसार और जीवन को देखने की कोई दृष्टि होती है, (23) जो कवि इस दृष्टि-बोध को अभिव्यक्ति दे सके वही राष्ट्र का राष्ट्रकवि कहलाने योग्य है। भारतवर्ष में हम मैथिलीशरण जी, माखनलाल चतुर्वेदी जी और सुब्रह्मण्यम भारती जी को राष्ट्रकवि कहते हैं, किन्तु यह आंशिक सत्य है। (24) हमारे असली राष्ट्रकवि वाल्मीकि हैं, कालिदास हैं, तुलसीदास हैं, और रवीन्द्रनाथ ठाकुर हैं, क्योंकि—भारत धर्म को इन्होंने सबसे अधिक अभिव्यक्ति दी है।

[दिनकर की डायरी, पृष्ठ 210; '73]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्पूर्ण काव्य से चुनी हुई कुछ प्रेरक पंक्तियाँ

राष्ट्रकविश्री

'प्रण-भंग' से :

तोड़ी प्रतिज्ञा कृष्ण ने, विजयी बनाने पार्थ को
अघ है न क्या, नय छोड़ना लखकर स्वजन के स्वार्थ को —पृ. 38

'रेणुका' से :

रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ, जाने दे उनको स्वर्ग धीर
पर, फिरा हमें गाण्डीव-गदा, लौटा दे अर्जुन-भीम वीर।

........(दिनकरजी की जनप्रियता का आरम्भ-बिन्दु) —हिमालय

ऋण-शोधन के लिए दूध-घी बेच-बेच धन जोड़ेंगे,
बूँद-बूँद बेचेंगे, अपने लिए नहीं कुछ छोड़ेंगे।
शिशु मचलेंगे, दूध देख, जननी उनको बहलायेगी,
मैं फाडूँगा हृदय, लाज से आँख नहीं रो पायेगी।
इतने पर भी धनपतियों की उनपर होगी मार,
तब मैं बरसूँगी बन बेबस के आँसू सुकुमार।

—कविता की पुकार

दलित हुए निर्बल सबलों से मिटे राष्ट्र, उजड़े दरिद्र जन,
आह ! सभ्यता आज कर रही असहायों का शोणित शोषण।
क्रान्ति-धात्रि कविते ! जाग उठ, आडम्बर में आग लगा दे;
पतन, पाप, पाखण्ड जलें, जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे।

—कस्मै देवाय

सूखी रोटी खायेगा जब कृषक खेत में धरकर हल,
तब दूँगी मैं तृप्ति उसे बनकर लोटे का गंगाजल।
उसके तन का दिव्य स्वेदकण बनकर गिरती जाऊँगी,
और खेत में उन्हीं कणों से मैं मोती उपजाऊँगी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फूलों की क्या बात ? बाँस की हरियाली पर मरता हूँ।
अरी दूब, तेरे चलते, जगती का आदर करता हूँ।
इच्छा है, मैं बार-बार कवि का जीवन लेकर आऊँ,
अपनी प्रतिभा के प्रदीप से जग की अमा मिटा जाऊँ।

—विश्वछवि

'हुंकार' से :

हूँ जगा रहा आलोक अरुण बाणों से,
मरण में जीवन फूँक रहा गानों से।
मैं विभा-पुत्र जागरण गान है मेरा
जग को अक्षय आलोक, दान है मेरा।
ज्योतिर्धर कवि मैं ज्वलित सौर-मण्डल का,
मेरा शिखण्ड अरुणाभ किरीट अनल का,
रथ में प्रकाश के अश्व जुते हैं मेरे,
किरणों में उज्ज्वल गीत गुंथे हैं मेरे।

—आलोकधन्वा

स्वातन्त्र्य, पूजता मैं न तुझे इसलिए कि तू सुख-शान्ति-रूप,
हाँ उसे पूजता, जो चलता तेरे आगे नित क्रान्ति-रूप।
मुझ में उसका बल, तेज, रोष तेरे दल में जिसका निनाद।
विप्लव का जो है तूर्य-नाद, मेरे दिल की वह आह एक।
बल उठे किसी दिशि वह्नि-राशि, ले-देकर मेरी चाह एक।

—चाह एक

हटो व्योम के मेघ, पन्थ से, स्वर्ग लूटने हम आते हैं।
'दूध, दूध' ओ वत्स ! तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं।

—हाहाकार

श्वानों को मिलते दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,
माँ की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं।
युवती के लज्जा-वसन बेच जब ब्याज चुकाये जाते हैं,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मालिक जब तेल-फुलेलों पर पानी-सा द्रव्य बहाते हैं,
पापी महलों का अहंकार तब देता मुझको आमन्त्रण,
झन-झन-झन-झन-झन-झनन-झनन।

—त्रिपथगा

न देखे विश्व पर मुझको घृणा से, मनुज हूँ सृष्टि का शृंगार हूँ मैं।
सुनूँ क्या सिन्धु ! मैं गर्जन तुम्हारा स्वयं युग-धर्म का हुंकार हूँ मैं।

—परिचय

'द्वन्द्वगीत' से :

विभा, विभा, ओ विभा हमें दे,
किरण ! सूर्य ! दे उजियाली।
आह ! युगों से घेर रही,
मानव-शिशु को रजनी काली।
प्रभो ! रिक्त यदि कोष विभा का,
तो फिर इतना ही कर दे;
दे जगती को फूँक, तनिक,
झिलमिला उठे यह अंधियाली ! —पद सं.-22

'सामधेनी' से :

प्यारे स्वदेश के हित अंगार माँगता हूँ।
चढ़ती जवानियों का शृंगार माँगता हूँ। —आग की भीख

यह झण्डा, जिसको मुर्दे की मुट्ठी जकड़ रही है,
छिन न जाय, इस भय से अब भी कसकर पकड़ रही है,
थामो इसे, शपथ लो, बलि का कोई क्रम न रुकेगा,
चाहे जो हो जाय, मगर, यह झण्डा नहीं झुकेगा।
इस झण्डे में शान चमकती है मरनेवालों की,
भीमकाय पर्वत से मुट्ठी भर लड़नेवालों की।

—सरहद के पार से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गरज कर बता सबको, मारे किसी के मरेगा नहीं हिन्द-देश
लहू की नदी तैर कर आ गया है, कहीं से कहीं हिन्द-देश।

—जवानी का झण्डा

उठो, उठो, कुरीतियों की राह तुम भी रोक दो,
बढ़ो बढ़ो कि आग में गुलामियों को झोंक दो,
परम्परा की होलिका जला रहीं जवानियाँ

—जवानियाँ

गरजते शेर आये, सामने फिर भेड़िये आये,
नखों को तेज, दाँतों को बहुत तीखा किये आये,
मगर परवाह क्या ? हो जा खड़ा तू तानकर उसको,
छिपी जो हड्डियों में आग-सी तलवार है साथी।

—साथी

'सामधेनी' से :

ओ बदनसीब! इस ज्वाला में, आदर्श तुम्हारा जलता है।
समझायें कैसे तुम्हें कि, भारतवर्ष तुम्हारा जलता है।
जलते हैं हिन्दू-मुसलमान, भारत की आँखें जलती हैं।
आनेवाली आजादी की, लो दोनों पाँखें जलती हैं।

—हे मेरे स्वदेश

लूटता है गोदियों के लाल,
लूटता सिन्दूर सज्जित भाल,
यह मनुज-तन में किसी शक्रारि का अवतार,
लूट लेता है नगर की सिद्धि सुख शृंगार
शमित करने को स्वमद अति ऊन,
चाहिए उसको मनुज का खून।

—कलिंग विजय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विवश देश की छाती पर ठोकर की एक निशानी
दिल्ली पराधीन भारत की जलती हुई कहानी.
मरे हुओं की ग्लानि, जीवितों को रण की ललकार
दिल्ली, वीरविहीन देश की गिरी हुई तलवार

—दिल्ली और मास्को

'रसवन्ती' से :

शाप का अधिकारी यह विश्व किरीचों का जिसको अभिमान
दीन-दलितों के क्रन्दन बीच, आज क्या डूब गये भगवान् ?
बन्धनों से होकर भयभीत, किन्तु क्या हार सका अनुराग ?
मानकर किस बन्धन का दर्प, छोड़ सकती ज्वाला को आग !

—रसवन्ती

पड़ जाता चस्का जब मोहक, प्रेम-सुधा पीने का,
सारा स्वाद बदल जाता है, दुनिया में जीने का।
मंगलमय हो पन्थ सुहागिन, यह मेरा वरदान;
हरसिंगार की टहनी-से फूलें तेरे अरमान।

—बालिका से वधू

'नील कुसुम' से :

वृथा मत लो भारत का नाम।
मानचित्र में जो मिलता है, नहीं देश भारत है,
भू पर नहीं, मनों में ही, बस, कहीं शेष भारत है।

'नीलम कुसुम' से :

भारत एक स्वप्न भू को ऊपर ले जानेवाला,
भारत एक विचार, स्वर्ग को भू पर लानेवाला।
भारत एक भाव, जिसको पाकर मनुष्य जगता है,
भारत एक जलज, जिस पर जल का न दाग लगता है।
भारत है संज्ञा विराग की, उज्ज्वल आत्म उदय की,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भारत है आभा मनुष्य की सबसे बड़ी विजय की,
भारत है भावना दाह जग-जीवन का हरने की,
भारत है कल्पना मनुज को राग-मुक्त करने की।
जहाँ कहीं एकता अखण्डित जहाँ प्रेम का स्वर है,
देश-देश में खड़ा वहाँ भारत जीवित, भास्वर है।
भारत वहाँ जहाँ जीवन-साधना नहीं है भ्रम में,
धाराओं को समाधान है मिला हुआ संगम में।
जहाँ त्याग माधुर्यपूर्ण हो, जहाँ भोग निष्काम,
समरस हो कामना, वहीं भारत को करो प्रणाम।
वृथा मत लो भारत का नाम।

—हिमालय का सन्देश

विषधारी ! मत डोल कि मेरा आसन बहुत कड़ा है,
कृष्ण आज लघुता में भी साँपों से बहुत बड़ा है।
आया हूँ बाँसुरी-बीच उद्धार लिये जनगण का,
फण पर तेरे खड़ा हुआ हूँ भार लिये त्रिभुवन का,
बढ़ा, बढ़ा नासिका, रन्ध्र में मुक्ति-सूत्र पहनाऊँ,
तान, तान फण व्याल, कि तुझपर मैं बाँसुरी बजाऊँ।

—व्याल-विजय

बड़ी कविता कि जो इस भूमि को सुन्दर बनाती है,
बड़ा वह ज्ञान जिससे व्यर्थ की चिन्ता नहीं होती।
बड़ा वह आदमी जो जिन्दगी भर काम करता है,
बड़ी वह रूह जो रोये बिना तन से निकलती है।

—स्वप्न और सत्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'नील कुसुम' से :

फावड़े और हल राजदण्ड बनने को हैं,
धूसरता सोने से शृंगार सजाती है,
तो राह, समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।

—जनतन्त्र का जन्म

कहो, मार्क्स से डरे हुओं का, गाँधी चौकीदार नहीं है,
सर्वोदय का दूत किसी सञ्चय का पहरेदार नहीं है।

—काँटों का गीत

वज्र की दीवार जब भी टूटती है,
नींव की यह वेदना विकराल बनकर छूटती है,
दौड़ता है दर्द की तलवार बनकर,
पत्थरों के पेट से नरसिंह ले अवतार।

—नींव का हाहाकार

हो कहाँ अग्निधर्मा नवीन ऋषियो? जागो,
कुछ नयी आग, नूतन ज्वाला की सृष्टि करो।
शीतल प्रमाद से ऊँघ रहे हैं जो, उनकी,
मखमली सेज पर चिनगारी की वृष्टि करो।

—कवि और समाज

जलता है सब ओर यही अभिमान मनुज का,
जग में है जो दाह, इसी गौरव का फल है,
राष्ट्रदेव ! वह भी लेता है नाम तुम्हारा,
खींच रहा जो शान्ति-सुन्दरी का अञ्चल है।

—राष्ट्रदेवता का विसर्जन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक सजाता है धरती का अञ्चल फुल्ल जिसकी,
भरता भूतल में समृद्धि सुषमा अपने होती है !.....
होता विदा जगत से जग को कुछ केवल,
साथ हुआ था जहाँ, वहाँ से कुछ र होती है।

—चाँद और कवि

'उर्वशी' से :

मर्त्य नर को देवता कह
देवता शीतल इस अन्धकार में भी तुम,
काले बरछे जब बरस रहे हैं,
सरिताएँ जमकर बर्फ हुई जाती हैं,
जब बहुत लोग पानी को तरस रहे हैं ?

—आशा की वंशी

'सीपी और शंख' से :

मत छुओ इस झील को,/कंकरी मारो नहीं,
पत्तियाँ डारो नहीं,/फूल मत बोरो।
और कागज की तरी उसमें नहीं छोड़ो।
खेल में तुमको पुलक-उन्मेष होता है,
लहर बनने में सलिल को क्लेश होता है। —झील

'कुरुक्षेत्र' से :

सच है, सत्ता सिमट-सिमट जिनके हाथों में आयी
शान्तिभक्त वे साधु-पुरुष क्यों चाहें कभी लड़ाई ?
शान्ति खोलकर खड्ग क्रान्ति का जब वर्जन करती है,
तभी जान लो, किसी समर का वह सर्जन करती है।
शान्ति नहीं तब तक जब तक सुख-भाग न नर का सम हो।
नहीं किसी को बहुत अधिक हो, नहीं किसी को कम हो!

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षमा शोभती उस भुजंग।
उसको क्या, जो दन्तहीन, ख बनने को हैं,

जाती है,
पापी कौन ? मनुज से
या कि न्याय खोजते विघ्न क घर्घर-नाद सुनो,
आती है।

—जनतन्त्र का जन्म

यह मनुज, जिसका गगन में जा रहा है
काँपता जिसके करों को देखकर परमाणु,
खोलकर अपना हृदय गिरि, सिन्धु, भू, आकाश,
हैं सुना जिसको चुके निज गुह्यतम इतिहास।
खुल गये पर्दे, रहा अब क्या यहाँ अज्ञेय?
किन्तु नर को चाहिए नित विघ्न कुछ दुर्जेय,

'कुरुक्षेत्र':

सोचने को और करने को नया संघर्ष
नव्य जय का क्षेत्र पाने को नया उत्कर्ष।

—सर्ग-6

जय हो, अघ के गहन गर्त्त में गिरे हुए मानव की,
मनु के सरल, अबोध पुत्र की, पुरुष ज्योतिसम्भव की।
हार मान हो गयी न जिसकी किरण तिमिर की दासी;
न्योछावर उस एक पुरुष पर कोटि-कोटि संन्यासी।

—सर्ग-7

जिसने श्रम जल दिया, उसे, पीछे मत रह जाने दो।
विजित प्रकृति से सबसे पहले उसको सुख पाने दो।
जो कुछ न्यस्त प्रकृति में है, वह मनुज मात्र का धन है।
धर्मराज, उसके कण-कण का अधिकारी जन-जन है।

—सर्ग-7

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक सजाता है धरती का अञ्चल फुल्ल कमल से
भरता भूतल में समृद्धि सुषमा अपने भुजबल से.....
होता विदा जगत से जग को कुछ रमणीय बनाकर
साथ हुआ था जहाँ, वहाँ से कुछ आगे पहुँचा कर। —सर्ग-7

'उर्वशी' से :

मर्त्य नर को देवता कहना मृषा है।
देवता शीतल, मनुज अंगार है।
देवताओं की नदी में ताप की लहरें न उठतीं,
किन्तु, नर के रक्त में ज्वालामुखी हुंकारता है,
घूर्णियाँ चिनगारियों की नाचती हैं,
नाचते उड़कर दहन के खण्ड पत्तों-से हवा में,
मानवों का मन गले-पिघले अनल की धार है। —अंक-3

'परशुराम की प्रतीक्षा' से :

दासत्व जहाँ है, वहीं स्तब्ध जीवन है,
स्वातन्त्र्य निरन्तर समर, सनातन रण है,
स्वातन्त्र्य समस्या नहीं आज या कल की,
जागर्ति तीव्र वह घड़ी-घड़ी पल-पल की।
पहरे पर चारों ओर सतर्क लगो रे।
धर धनुष-बाण उद्यत दिन-रात जगो रे। —खण्ड-5; (11)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुमुक्षु भवन वेद वेदांग विद्यालय
ग्रन्थालय
आगत क्रमांक.................................
दिनांक.......................................

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri